अनुक्रमणिका

*	मंगलाचरण	1
1.	गणित विषयक प्रक्रियाऐं	2
2.	मान/माप/प्रमाण	9
3.	संख्या की व्यापकता	11
4.	संख्या प्रमाण	19
5.	चौदह धाराऐं	27
6.	उपमा प्रमाण	43
7.	अक्ष संचार गणित निर्देश	51
8.	एक–द्वि–त्रि आदि संयोगी भंग प्राप्ति की विधि व त्रैराशिक गणित विधि	57
9.	श्रेणी व्यवहार गणित	59
10.	संहननियाँ	69
11.	लोक का क्षेत्रफल व घनफल	81
12.	अधोलोक का क्षेत्रफल	83
13.	ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल	95
14.	सम्पूर्ण लोक की परिधि एवं समस्त पवनों से रुद्धक्षेत्र का घनफल	107
15.	सम्पूर्ण लोकाकाश के सम्पूर्ण वायुमण्डल का चित्रण	116
16.	अधोलोक की पृथ्वियों के बिलों की संख्या का विस्तार	125
17.	इन्द्रक बिलों का विस्तार तथा सम्पूर्ण बिलों का बाहुल्य	132
18.	इन्द्रादिक बिलों का अन्तराल व पटलों का अन्तराल	135
19.	सातों नरकों के पटलों की जघन्योत्कृष्ट आयु व उत्सेध	144

ज्योतिर्लोक गणित

1.	जम्बूद्वीप व लवण समुद्रादि द्वीप समुद्रों की परिधि, क्षेत्रफल व व्यास	156
2.	एकेन्द्रियादि जीवों के शरीर का घनफल (उत्कृष्ट अवगाहना वाले)	166
3.	ज्योतिर्लोक में स्थित ज्योतिर्विमानों का वर्णन	168
4.	लवणादि समुद्र से पुष्करार्ध पर्यन्त स्थित चन्द्र सूर्यों का अन्तर	175
5.	भ्रमण करते हुए सूर्य के दिन–रात्रि व गति का प्रमाण	195

6. सूर्य उदय व सूर्य अस्त कब ? 202
7. सूर्य-चन्द्रमा के उदय स्थान व सूर्य के आताप क्षेत्र 208
8. ज्योतिषी देवों में नक्षत्र, नक्षत्रों के गगनखण्ड व नक्षत्रों का भुक्तिकाल 213
9. अयनों में सूर्य, चन्द्र व राहु द्वारा नक्षत्रों के भुक्तिकाल 218
10. अयनों में आवृत्ति, नक्षत्र, पर्व, तिथि और विषुप आदि को प्राप्त करने का विधान 223

परिशिष्ट–

1. प्रमाण 238
2. जीवों की संख्या 241
3. सूत्र निर्देश 248
4. पुरुष वेदी सम्यग्दृष्टि जीवों का अल्बहुत्व प्रमाण 256
5. संदर्भित ग्रंथ सूची 258

मंगलाचरण

पणमिय सिरि जिणदेवं सद इंद वंदिओ सया णिच्चं।
सव्वे गणहरसामी अणुबद्ध केवली वंदे।।

अर्थ– जो नित्य ही सदाकाल सौ इन्द्रों से वन्दनीय हैं ऐसे जिनेन्द्र देव को नमस्कार सर्व तीर्थंकरो के गणधरदेवों को नमस्कार करता हूँ और अनुबद्ध केवली जिन को नमस्कार करता हूँ।

धरसेणं गुरुं वंदे, वंदे पुप्फदंत भूदं च।
णमि वीरसेण सामिं, वंदे कुंद कुंदाइरियाणं।।2।।

श्रुतज्ञान लिपिबद्धता के प्रणेता आचार्य धरसेन स्वामी और आचार्य पुष्पदंत व भूतवली को नमस्कार करता हूँ। कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य वीरसेन स्वामी व कुन्द–कुन्द देव को नमस्कार करता हूँ।

णमिदूण परंपरयां, आदि महावीर विमलं च।
सम्मदि सूरि विरागं वोच्छामि गणिय पवोहं च।।3।।

परम्पराचार्यों की वंदना करके आचार्य आदिसागर जी, आचार्य महावीरकीर्ति जी, वात्सल्य रत्नाकर आचार्य विमलसागर जी व आचार्य सन्मतिसागर जी की वंदना करके मम दीक्षा प्रदाता ऊर्ध्वारोहणकर्ता, अध्यात्म जगत के राजहंस, न्याय मार्तण्ड, सूरिगच्छाचार्य गुरुवर विरागसागर जी के चरण कमलों में नमस्कार करके गणित प्रबोध नामक ग्रन्थ को कहता हूँ।

अध्याय – 1

गणित विषयक प्रक्रियाएँ

अंकों की गति वाम भाग से होती है –

अंकानां वामनो गति : (गोम्मटसार जीवकाण्ड)

अर्थात् अंकों का अनुक्रम बाईं तरफ से होता है। जैसे – 256 के तीन अंकों में छह आदि (इकाई) अंक, पाँच दूसरा (दहाई) अंक, दो अंत (सैकड़ा) अंक है। यद्यपि अंकों को लिखते समय या राशि को मुँह से बोलते समय भी अंक बायें से दायें को लिखे या बोले जाते हैं। जैसे – 256 में दो अंक अन्त में बोलकर पहले बोला या लिखा गया परन्तु अक्षरों में व्यक्त करने के लिए उपरोक्त प्रकार पहले इकाई फिर दहाई रूप में इससे उल्टा क्रम ग्रहण किया जाता है।

परिकर्माष्टक गणित निर्देश – [गो.जी.]

संकलन, व्यकलन, गुणकार, भागहार, वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल इन आठ नामों को परिकर्माष्टक जानना चाहिए।

संकलन की प्रक्रिया – किसी प्रमाण को किसी प्रमाण में जोड़ने को संकलन कहते हैं। जिसमें जोड़ा जाये उसे 'मूलराशि' कहते हैं। और जोड़ने योग्य राशि का नाम 'धन' है।

अर्थ संदृष्टि – जोड़ते समय धनराशि ऊपर और मूल राशि नीचे लिखी जाती है।

जैसे - $1000^{5} = 1000 + 5 = 1005$ य $1000^{5-} = 1000 + 5 = 1005$

जबकि अंक संदृष्टि विधि में मूलराशि ऊपर और धनराशि नीचे लिखकर जोड़ा जाता है।

जैसे –

$$\begin{array}{r} 1000 \\ \underline{5} \\ \underline{1005} \end{array}$$

व्यकलन की प्रक्रिया – किसी प्रमाण को किसी प्रमाण से घटाना व्यकलन कहलाता है। जिस राशि में से घटाया जाता है उसे 'मूलराशि' कहते हैं। तथा घटाने योग्य राशि का नाम 'ऋण' है। मूलराशि में से जो राशि घटाई जाती है उसे हीन अथवा न्यून अथवा शोधित अथवा स्फोटित कहते हैं।

अर्थ संदृष्टि – घटाते समय निम्न विधियों के प्रयोग का व्यवहार है –

(1)–$(\overset{5}{1000}) = 1000 - 5 = 995$ (2) – $(\frac{1}{\text{ल}}\Omega)$ = एक घाट लक्ष

(3)– $(\frac{1^{0}}{\text{को}})$ = एक घाट कोटि (4)– (ल–2) = 2 घाट लक्ष

(5)– $(\overset{\text{ल}}{\underset{1}{}}0)$ = एक घाट लक्ष (6)– (ख–) = किंचिदून अनन्त

(7)– (ल〰2) = 2 घाट लक्ष (8)– (ल – 5) = 5 घाट लक्ष

(9)– (ल=2) = (ल–2–2) (11) – (छे व छे) = पल्य की अर्धच्छेद राशि में से पल्य की वर्ग शलाका राशि को घटाना।

(10) – $(\frac{\text{ल}}{5})$ = 5 घाट लक्ष

अंक दृष्टि = 1000−1 = 999, 5 कम एक करोड़ = 10000000−5=9999995 आदि।

गुणकार प्रक्रिया – किसी प्रमाण को किसी प्रमाण से गुणा करना गुणकार है।
गुणकार में जिसका गुणा किया जाता है, उसका नाम 'गुण्य' है।
जिसमें गुणा किया जाता है, उसका नाम 'गुणकार या गुणक' है।
गुण्य राशि को गुणकार करना गुणित, हत अथवा अभ्यस्त अथवा घ्नत है।
गुणने का नाम गुणन या हनन या घात इत्यादि है।
अर्थ संदृष्टि – गुणा करते समय गुणकार को ऊपर व गुण्य को नीचे लिखकर निम्न प्रकार खण्डों द्वारा गुणा करने का व्यवहार था जैसे –

16	16	16	16
256	3256	4006	256
1X2 = 2 6X2=12 56	32 1X5=5 6X5= 30 6	400 1X6=6 6X6=36	=16X256 =4096
3256	4006	4096	

जबकि अंक संदृष्टि विधि में गुण्य राशि को ऊपर व गुणकार राशि को नीचे रखकर गुणा किया जाता है।

जैसे –
$$\begin{array}{r} 256 \\ \times 16 \\ \hline 4096 \end{array}$$

भागहार प्रक्रिया – किसी प्रमाण का किसी प्रमाण में भाग दिया जाता है तब प्राप्त राशि को भागहार कहते हैं।
जिसमें भाग दिया जाता है उसका नाम ''भाज्य या हार्य'' है।
जिसका भाग दिया जाता है उसका नाम 'भाजक' या हार है।
भाज्य राशि को भाजक करना भाजिका, भक्त या हत या खण्डित कहलाता है।
अर्थ संदृष्टि – भाग देते समय भाज्य ऊपर व भागहार नीचे लिखा जाता है।
जैसे – $\frac{4096}{16}$ = 256 अथवा $\frac{\text{को}}{5}$ = कोटि का पाँचवाँ भाग

अथवा 1/½ = 1½

भाजन विधि

4096	896	96
16 × 2 = 32	16 × 5 = 80	16 × 6 = 96
896	96	0

16 के तीनों गुणकारों को क्रम से लिखने पर 2,5,6 = 256 लब्ध आ जाता है।

प्र. गुणकार क्या है ?

उत्तर– किसी संख्या को उसी संख्या में जितने बार जोड़ा जाए उसके बाद जो संख्या प्राप्त हुई है उसे प्राप्त करने की सरल विधि ही गुणकार है।

जैसे – 5+5+5+5+5+5 = इनको जोड़ा जायेगा तो तीस संख्या प्राप्त होती है किंतु गुणकार में इसे सरलता से लिखने के लिए 6x5 =30 प्राप्त हो जाती है। अर्थात् राशि को गुणकार राशि बार क्षेपण करना या मिलाना इसी प्रकार 256+256+256+256=1024 प्राप्त हुआ इसे गुणन्फल विधि से 256X4 = 1024 प्राप्त होता है। इसमें समय की बचत व आसानी से संख्या की प्राप्ति संभव है इसी प्रकार हम बड़ी से बड़ी संख्याऐं प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार की विधि सर्वप्राचीनं ग्रंथ षट्खण्डागम (धवला जी) से प्राप्त की जा सकती है।

प्रश्न– भागहार क्या है ?

उत्तर– बटावे को भाग कहते हैं जैसे माना हमारे पास 500 रू. है उन्हें समान रूप से 10 लोगों में बाँटना है यथा– 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1

50+50+50+50+50+50+50+50+50+50 इस प्रकार 50 रू. पर व्यक्ति आता है इसे हम $\frac{500}{10}$ भी लिख सकते है। जिस संख्या का भाग दिया जा रहा है उसे भागहार जिस संख्या में दिया जा रहा है उसे भाज्य संख्या के नाम से कहा जाता है।

वर्ग व वर्गमूल की प्रक्रिया – किसी प्रमाण को दो जगह रखकर आपस में गुणा करने पर प्राप्त प्रमाण को 'वर्ग' कहते हैं। वर्ग के मूल को 'वर्गमूल' कहते हैं।

जैसे – पच्चीस पाँच का वर्ग है और 25 का वर्गमूल 5 है।

* वर्ग का नाम कृति भी है। * वर्गमूल का नाम कृतिमूल/ मूल / पाद / प्रथम मूल भी है। [प्रथम बार वर्ग करने को प्रथम वर्ग कहते हैं] उस वर्ग को पुन: वर्ग करने को द्वितीय वर्ग कहते हैं। इसी प्रकार तृतीय, चतुर्थ आदि वर्ग जानना चाहिए।

* प्रथम मूल के मूल को द्वितीय मूल, द्वितीय मूल के मूल को तृतीय मूल कहते हैं। इसी प्रकार तृतीय, चतुर्थ आदि मूल जानना चाहिए।

धवला पुस्तक 5 से – प्रथम वर्ग = $अ^2$, द्वितीय वर्ग = $(अ^2)^2$ = $अ^4$

प्रथम वर्गमूल = $अ^{1/2}$, द्वितीय वर्गमूल = $(अ^{1/2})^{1/2}$ = $अ^{1/4}$

अंक संदृष्टि से वर्ग व वर्गमूल –

2 का प्रथम वर्ग = 2^2=4, द्वितीय वर्ग = 4^2 = 16, तृतीय वर्ग =16^2 = 256 इसी प्रकार संख्यात, असंख्यात, अनंत वर्ग करते जाना चाहिए जब तक केवलज्ञान का प्रथम वर्गमूल प्राप्त न हो।

जैसे– माना केवलज्ञान की संख्या = 65536 है, इसका प्रथम वर्गमूल ($\sqrt{65536}$) =256 होगा अर्थात् 2 से लेकर यहाँ तक की संख्याओं का ही वर्ग हो सकता है किन्तु 256 के बाद वर्ग नहीं हो सकता क्योंकि आगे की संख्या का वर्ग केवलज्ञान की संख्या का उल्लंघन करता है।

शंका– शास्त्रों में हमें पढ़ने को मिलता है कि ''अमुक संख्या का असंख्यात प्रथम वर्गमूल'' इसका तात्पर्य क्या है?

समाधान– विवक्षित संख्या का प्रथम बार वर्गमूल निकाले, उसी संख्या का दूसरी बार प्रथम वर्गमूल ग्रहण करें, इसी संख्या का तीसरी बार प्रथम वर्गमूल ग्रहण करे इसी प्रकार असंख्यात बार वर्गमूल निकालकर उन्हें आपस में जोड़ दे तो प्राप्त लब्ध संख्या, विवक्षित संख्या का असंख्यात प्रथम वर्गमूल संख्या कहलायेगी।

जैसे– माना विवक्षित संख्या –65536 है और असंख्यात का प्रमाण = 4 है तब इस संख्या

का प्रथम वर्गमूल = $\sqrt{65536}$ = 256

दूसरी प्रथम बार वर्गमूल = $\sqrt{65536}$ = 256

तीसरी प्रथम बार वर्गमूल = $\sqrt{65536}$ = 256

चतुर्थ प्रथम बार वर्गमूल = $\sqrt{65536}$ = 256

अत: इनका योग (256+256+256+256) = 1024 यह 65536 संख्या का प्रथम वर्गमूल प्राप्त हुआ।

इस प्रकार वर्ग–वर्गमूल की व्यापकता जैन आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित की गई है, अन्य गणितज्ञ वहाँ तक नहीं पहुँच पाये है।

घन व घनमूल प्रक्रिया – किसी प्रमाण को तीन जगह रखकर आपस में गुणा करने पर प्राप्त प्रमाण को 'घन' कहते हैं। घन के मूल को 'घनमूल' कहते हैं।

जैसे – 125 पाँच का घन है और 125 का घनमूल 5 है।

अर्थ संदृष्टि – गुणन विधि आदि सर्व गुणकारवत् जानना चाहिए।

$5^3 = 5 \times 5 \times 5 = 125$ वर्ग व वर्गमूल की भाँति यहाँ भी प्रथम, द्वितीय आदि घन तथा प्रथम द्वितीय आदि घनमूल जानना चाहिए।

धवला पुस्तक 5 से = प्रथम घन = अ^3, द्वितीय घन = $(\text{अ}^3)^3$ = अ^9

प्रथम घनमूल = $\text{अ}^{1/3}$, द्वितीय घनमूल = $[\text{अ}^{1/3}]^{1/3}$ = $\text{अ}^{1/9}$

शून्य परिकर्माष्टक की प्रक्रियाएँ – शून्य अर्थात् (बिन्दी) को संकलनादिक आठ प्रकार से कहते हैं।

(1) संकलन	=	अंक + 0 = अंक	(2+0=2)
(2) व्यकलन	=	अंक – 0 = अंक	(2–0=2)
(3) गुणकार	=	अंक × 0 = 0	(2x0=0)
(4) भागहार	=	अंक ÷ 0 = (अवक्तव्य)	(2÷ 0 =0)
(5) वर्ग	=	$(0)^2 = 0$	$(0)^2 = 0$
(6) वर्गमूल	=	$(0)^{½} = 0$	$(0)^{1/2} = 0$
(7) घन	=	$(0)^3 = 0$	$(0)^3 = 0$
(8) घनमूल	=	$(0)^{1/3} = 0$	$(0)^{1/3} = 0$

विरलन देय या घातांक गणित की प्रक्रिया–

धवला पु. 5 व गोमट्टसार आदि करणानुयोग के ग्रन्थों में विरलन-देय अर्थात् 'फैलाना और देना' नामक प्रक्रिया का उल्लेख आता है। किसी संख्या का विरलन करना अर्थात् फैलाना या उस संख्या को एक-एक में अलग-अलग करना। जैसे-न के विरलन का अर्थ है-1,1,1,1.... न बार।

देय का अर्थ है उपर्युक्त अंकों में प्रत्येक स्थान पर एक की जगह न अथवा किसी भी विवक्षित संख्या को रख देना। (लिखने में विरलन राशि ऊपर लिखी जाती है और देय राशि नीचे जैसे 6^4 में 6 देय है और 4 विरलन) फिर विरलन-देय से उत्पन्न संख्याओं को परस्पर गुणा कर देने से उस संख्या का वर्गित-संवर्गित प्राप्त हो जाता है और यही उस संख्या का प्रथम वर्गित-संवर्गित कहलाता है।

जैसे-न का प्रथम वर्गित – संवर्गित = $न^न$ । विरलन देय की एक बार पुनः प्रक्रिया करने से अर्थात् $न^न$ को लेकर वही विधान फिर से करने पर द्वितीय वर्गित-संवर्गित $(न^न)^{न^न}$ प्राप्त है। इसी विधान को पुनः एक बार करने से 'न' का तृतीय वर्गित-संवर्गित $\left[\{(न^न)^{न^न}\}^{\{(न^न)^{न^न}\}}\right]$ प्राप्त होता है

धवला पुस्तक में उक्त प्रक्रिया का प्रयोग तीन बार से अधिक अपेक्षित नहीं हुआ है, किन्तु तृतीय-संवर्गित का उल्लेख अनेक बार बड़ी संख्याओं का असंख्यात व अनन्त के सम्बन्ध में किया गया है। इस प्रक्रिया से कितनी बड़ी संख्या प्राप्त होती है इसका ज्ञान इस बात से हो सकता है कि 2 का तृतीय बार वर्गित-संवर्गित रूप 256^{256} हो जाता है।= 617 अंक प्रमाण संख्या हो जाती है।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि धवलाकार आधुनिक घातांक सिद्धान्त [Theory of indices या Powers] से पूर्णतः परिचित थे। यथा–

(1) $अ^म अ^न = अ^{म+न}$

(2) $अ^म / अ^न = अ^{म-न}$

(3) $(अ^म)^न = अ^{मन}$

(धवला पु. 5, त्रि.सा. व गोमट्टसार सम्प्रति जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग-2, पृ.सं. 214)

भिन्न परिकर्माष्टक प्रक्रिया– यहाँ अंश व हर का संकलन, व्यकलन आदि पूर्वोक्त आठों बातें जानते हैं।

जैसे– छह का पाँचवाँ भाग ($\frac{6}{5}$) में 6 को अंश, लव इत्यादि कहते हैं और 5 को हार, हर, छेद आदि कहते हैं।

भिन्न में संकलन, व्यकलन आदि की चार जाति है–1. भाग जाति, 2. प्रभाग जाति, 3. भागानुबंध, 4. भागापवाह। इनमें से यहाँ विशेष प्रयोजनभूत ''समच्छेद विधि'' अर्थात् भाग जाति को कहा है।

जहाँ अलग–अलग अंश व अलग–अलग हर होते हैं वहाँ एक–एक हर को अन्य के हर के अंश से गुणा करना चाहिए और सभी हरों को परस्पर गुणा करना चाहिए।

जैसे– $\frac{5}{6}+\frac{2}{3}+\frac{3}{4}$ इसमें पहले हर 6 को अन्य हरों के अंश (2 व 3) करना चाहिए।

वह इस प्रकार है–

(i) 6x2 + 6x3

12 + 18 = 30x2 = 60

(ii) 3x5 + 3x3

15 + 9 = 24x2 = 48

(iii) 4x5 + 4x2

20 + 8 = 28x2 = 56

ये तीनों संख्याओं के अंश हुए अब तीनों हरों का परस्पर में गुणा करें 6x3x4=72 प्राप्त हुआ। उपरोक्त रूप से गुणित सर्व अंशों का समान रूप से यह एक ही हर होता है।

जैसे– $$\left(\frac{5}{6}+\frac{2}{3}+\frac{3}{4}\right)=\left(\frac{60}{72}+\frac{48}{72}+\frac{56}{72}\right)$$

इस प्रकार सर्व राशियों के हरों का समान करना समच्छेद कहलाता है।

अब संकलन करना हो तो परस्पर अंशों को जोड़ दीजिए और व्यकलन करना हो तो मूल राशि के अंश से ऋणराशि के अंश को घटा दीजिए। और हर सबके समान है ही।

उदाहरण – **संकलन–** $$\frac{5}{6}+\frac{2}{3}+\frac{3}{4}=\frac{60}{72}+\frac{48}{72}+\frac{56}{72}=\frac{60+48+56}{72}$$
$$=\frac{164}{72}$$

व्यकलन– $$\frac{5}{6}+\frac{2}{3}-\frac{3}{4}=\frac{60}{72}+\frac{48}{72}-\frac{56}{72}=\frac{60+48-56}{72}$$
$$=\frac{108-56}{72}=\frac{52}{72}$$

गुणकार – भिन्न का गुणकार करने के लिए गुण्य और गुणकार के अंश को अंश से और हर को हर से गुणा करना चाहिए।

जैसे- $\frac{5}{6} \times \frac{2}{3} \times \frac{3}{4} = \frac{5\times2\times3}{6\times3\times4} = \frac{30}{72}$

भागहार – भिन्नों में भागहार निकालने के लिए भाजक के अंश को हर व हर को अंश करके फिर गुणकारवत् अंश को अंश से हर को हर से गुणा करना चाहिए।

जैसे- $\frac{5}{6} \div \frac{2}{3} = \frac{5}{6} \times \frac{3}{2} = \frac{5\times3}{6\times2} = \frac{15}{12}$

वर्ग– भिन्नों का वर्ग निकालने के लिए अंशों व हरों का पृथक्-पृथक् वर्ग करके अंश के वर्ग को लब्ध का अंश व हर के वर्ग को लब्ध का हर जानना चाहिए।

जैसे- $\left(\frac{5}{6}\right)^2 = \frac{5^2}{6^2} = \frac{5\times5}{6\times6} = \frac{25}{36}$

घन– भिन्नों को घन निकालने के लिए अंशों व हरों का पृथक्-पृथक् घन करके अंश के घन को लब्ध का अंश व हर के घन को लब्ध का हर जानना चाहिए।

जैसे- $\left(\frac{5}{6}\right)^3 = \frac{5^3}{6^3} = \frac{5\times5\times5}{6\times6\times6} = \frac{125}{216}$

वर्गमूल– भिन्नों का वर्गमूल निकालने के लिए अंशों व हरों का पृथक्-पृथक् वर्गमूल करके अंश के वर्गमूल का लब्ध का अंश व हर के वर्गमूल के लब्ध का हर जानना चाहिए।

जैसे- $\left(\frac{25}{36}\right)^{1/2} = \frac{25^{1/2}}{36^{1/2}} = \frac{5}{6}$

$\sqrt{\frac{25}{36}} = \frac{\sqrt{25}}{\sqrt{36}} = \frac{5}{6}$

घनमूल– भिन्नों का घनमूल निकालने के लिए अंशों व हरों का पृथक्-पृथक् घनमूल करके अंश के घनमूल को लब्ध का अंश व हर के घनमूल को लब्ध का हर जानना चाहिए–

जैसे- $\left(\frac{125}{216}\right)^{1/3} = \frac{125^{1/3}}{216^{1/3}} = \frac{5}{6}$

इस अध्याय में परिकर्माष्टक व भिन्न कर्माष्टक को जाना।

अगले अध्याय में मान के भेद–

1. लौकिक मान
2. अलौकिक मान को कहते हैं।

अध्याय – 2

मान/माप/प्रमाण

मान की परिभाषा–

मान के भेद – ❊ लौकिक और अलौकिक के भेद से मान दो प्रकार का बतलाया है। इसमें मान, उन्मान, अवमान, गणिमान, प्रतिमान और तत्प्रतिमान के भेद से **लौकिक मान** छह प्रकार का होता है।

- अन्नादि का जिसमें माप किया जाता है ऐसे प्रस्थादि को **मान** कहते हैं।
- तुलादि को **उन्मान** कहते हैं।
- चुल्लू से जो जलादि का माप होता है उसे **अवमान** कहते हैं।
- एक, दो, तीन आदि को **गणिमान** कहते हैं।
- गुज्जादि के माप को **प्रतिमान** कहते हैं।
- घोड़े के अवयव देखकर मूल्य करने को **तत्प्रतिमान** कहते हैं।

❊ द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ये चार भेद **लोकोत्तर मान** के हैं। जघन्य, मध्यम व उत्कृष्ट के भेद से चारों लोकोत्तर मान को ग्रहण किया है। सामान्यत: द्रव्यमान से द्रव्य [पदार्थ], क्षेत्रमान से प्रदेश [सर्वाकाश तक], कालमान से समय और भावमान से अविभागि प्रतिच्छेदों का ग्रहण किया जाता है।

लोकोत्तर मान	जघन्य	उत्कृष्ट
(1) द्रव्यमान	एक परमाणु (1)	सम्पूर्ण द्रव्य समूह (16 ख)
(2) क्षेत्रमान	एक प्रदेश (1)	सर्वाकाश (16 ख ख)
(3) कालमान	एक समय (1)	सर्वकाल (16 ख ख ख)
(4) भावमान	सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव का पर्याय ज्ञान	जिनेन्द्र भगवान में केवलज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेद

सभी का मध्यम मान अनेक प्रकार का है।

प्रश्न–गणना, संख्यात व कृति में क्या अंतर है?

गणना–गणना एक के अंक से प्रारम्भ होती है, यह एक की संख्या गणना होते हुए भी नोकृति है, क्योंकि एक संख्या का वर्ग करने पर वृद्धि नहीं होती तथा अत: उसमें से वर्गमूल के कम कर देने पर वह निर्मूल नष्ट हो जाती है। जैसे 1x1x1–1=0 अत: एक अंक गणना होते हुए भी नोकृति है।

संख्यात–संख्या 2 के अंक से प्रारम्भ होता है अर्थात् 2 का अंक जघन्य संख्यात है। यह दो का अंक अवक्तव्य कृति है क्योंकि दो का वर्ग करने पर इसमें वृद्धि तो देखी होती है किन्तु इसके वर्ग में से मूल घटाकर वर्ग करने पर वृद्धि नहीं होती। जैसे–2x2=4 वृद्धि नहीं हुई, अत: दो का अंक अवक्तव्य कृति है।

कृति–कृति तीन की संख्या आदि को लेकर होती है क्योंक जो राशि वर्गित होकर वृद्धि को प्राप्त होती है और अपने वर्ग में से अपने वर्ग के मूल को घटा कर शेष का वर्ग करने पर वृद्धि को प्राप्त होती है उसे कृति कहते है। जैसे–3x3=9, 9–3 मूलराशि=6, 6x6=36 यहाँ वृद्धि हुई1 अत: यह तीन का अंक कृति है।

❊ अब द्रव्यमान को कहते हैं – द्रव्यमान दो प्रकार का होता है– (1) संख्या प्रमाण (2) उपमा प्रमाण

(i) द्रव्य, क्षेत्र, काल प्रमाण का माप या मान

(ii) जैन गणित में संख्याओं की व्यापकता का एक विहंगम दृश्य

(iii)147, 150 अंकों तक की संख्याओं का विवेचन आगे देखेंगे–

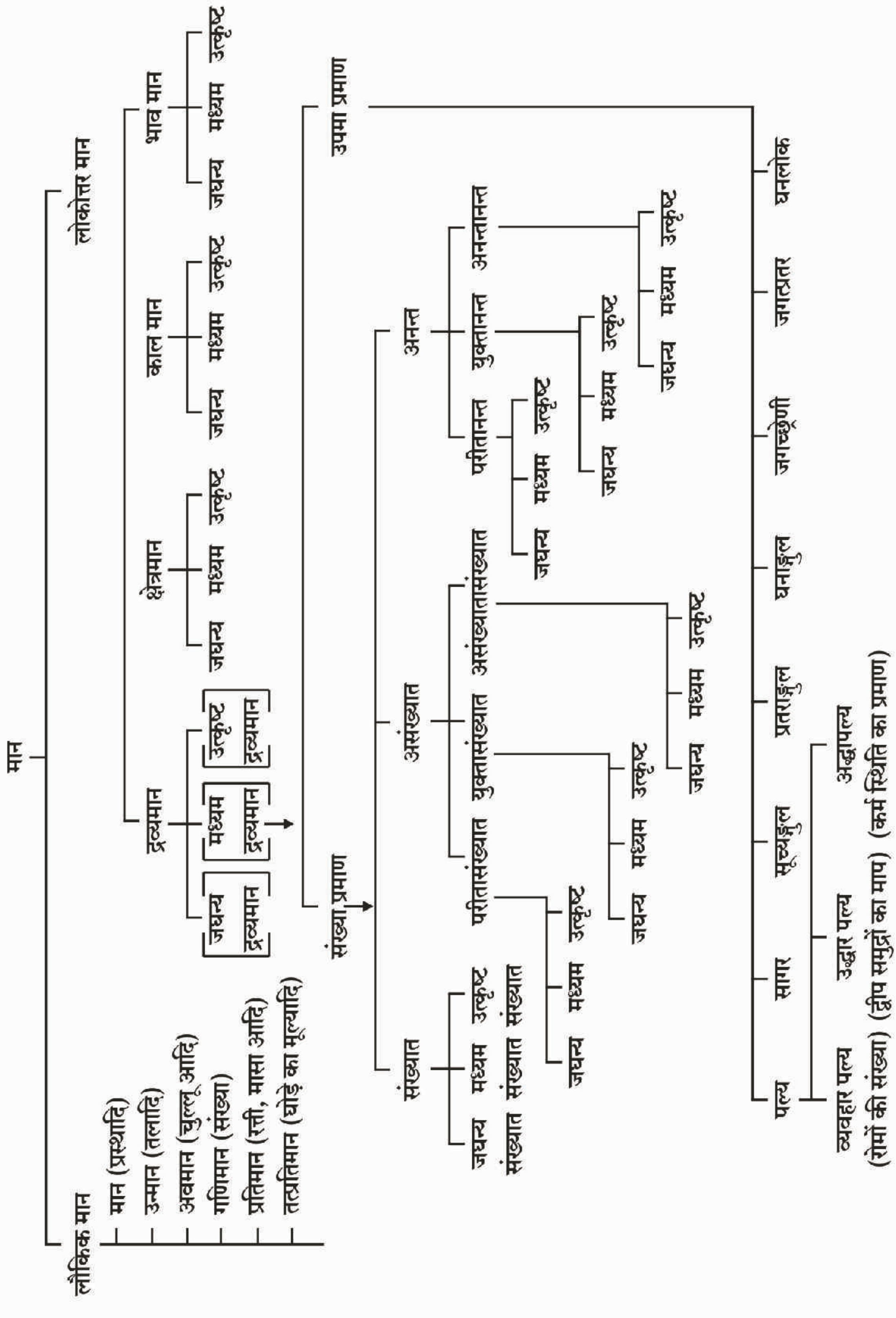
मान
लौकिक मान
मान (प्रस्थादि)
उन्मान (तलादि)
अवमान (चुल्लू आदि)
गणिमान (संख्या)
प्रतिमान (रत्ती, मासा आदि)
तत्प्रतिमान (घोड़े का मूल्यादि)
लोकोत्तर मान
द्रव्यमान
जघन्य द्रव्यमान
मध्यम द्रव्यमान
उत्कृष्ट द्रव्यमान
क्षेत्रमान
जघन्य
मध्यम
उत्कृष्ट
काल मान
जघन्य
मध्यम
उत्कृष्ट
भाव मान
जघन्य
मध्यम
उत्कृष्ट
संख्या प्रमाण
उपमा प्रमाण
संख्यात
जघन्य संख्यात
मध्यम संख्यात
उत्कृष्ट संख्यात
असंख्यात
परीतासंख्यात
युक्तासंख्यात
असंख्यातासंख्यात
जघन्य
मध्यम
उत्कृष्ट
अनन्त
परीतानन्त
युक्तानन्त
अनन्तानन्त
जघन्य
मध्यम
उत्कृष्ट
पल्य
सागर
सूच्यङ्गुल
प्रतराङ्गुल
घनाङ्गुल
जगच्छ्रेणी
जगत्प्रतर
घनलोक
व्यवहार पल्य
(रोमों की संख्या)
उद्धार पल्य
(द्वीप समुद्रों का माप)
अद्धापल्य
(कर्म स्थिति का प्रमाण)

अध्याय - 3

संख्याओं की व्यापकता

द्रव्यमान

लौकिक गणित की वैदिक गणित में 19 अंक तक की संख्या का प्रमाण है अर्थात् वहाँ पर 19 अंक की संख्या को दस शंख के रूप में पढ़ा जाता है। इसके आगे आने वाली संख्याओं को असंख्यात व अनन्त कह दिया जाता है।

लौकिक गणित की संख्या –

1 = इकाई [एक अंक की संख्या]

10 = दहाई [दो अंक की संख्या]

100 = सैकड़ा [तीन अंक की संख्या]

1000 = हजार [चार अंक की संख्या]

10000 = दस हजार [पाँच अंक की संख्या]

100000 = लाख [छः अंक की संख्या]

10,00,000 = दस लाख [सात अंक की संख्या]

10000000 = करोड़ [आठ अंक की संख्या]

100000000 = दस करोड़ [नौ अंक की संख्या]

1000000000 = अरब [दस अंक की संख्या]

10000000000 = दस अरब [ग्यारह अंक की संख्या]

100000000000 = खरब [बारह अंक की संख्या]

1000000000000 = दस खरब [तेरह अंक की संख्या]

10000000000000 = नील [चौदह अंक की संख्या]

100000000000000 = दस नील [पन्द्रह अंक की संख्या]

1000000000000000 = पद्म [सोलह अंक की संख्या]

10000000000000000 = दस पद्म [सत्रह अंक की संख्या]

100000000000000000 = शंख [अठारह अंक की संख्या]

1000000000000000000 = दस शंख [उन्नीस अंक की संख्या]

लेकिन जैन गणित में संख्याएँ अति दीर्घता को लिए हुए व्याप्त है जिनका उल्लेख अर्वाचीन महर्षियों ने आचार्य भगवन्तों ने करणानुयोग के ग्रंथों में बड़ी अच्छी तरह से किया है। षट्खण्डागम में इन संख्याओं की व्यापकता प्राप्त होती है तथा राजवार्तिक, जम्बूद्वीप पण्णत्ति, त्रिलोकसार, तिलोय पण्णत्ति आदि ग्रंथों में इन संख्याओं का भली-भाँति विश्लेषण किया है। आचार्य यतिवृषभ ने 150 अंक तक की संख्या को उच्चारण में पढ़कर बताया है किन्तु आचार्य वीरसेन स्वामी ने 2 का तीन बार वर्गित-समवर्गित करके 617 अंक की संख्या प्राप्त करके दिखलायी है लेकिन उसका उच्चारण नहीं किया जा

सकता। किन्तु उसे भी संख्यात ही कहा है, असंख्यात की श्रेणी से अभी यह संख्या बहुत दूर है। जैन दर्शन में असंख्यात का बहुत ही व्यापक रुप है जिसे हम आगे सिद्ध करेंगे यहाँ मात्र इतना कहा जा सकता है कि जो संख्या पढ़ी नहीं जाए अर्थात् पढ़ नहीं सकते लिख नहीं सकते वह संख्या असंख्यात है। प्रस्तुत है आचार्य वीरसेन स्वामी के द्वारा प्रणीत धवला पुस्तक नं. 5 पृ. 22 में संख्याओं का विहंगम दृश्य इस प्रकार है –

(1) एक – 1
(2) दस – 10
(3) शत – 100
(4) सहस्र – 1000
(5) दस सहस्र – 10000
(6) शत सहस्र – 100000 (लक्ष)
(7) दस शत सहस्र – 1000000 (दस लक्ष)
(8) कोटि – 10,000,000
(9) पकोटि – $(10,000,000)^2$ अर्थात् एक करोड़ x एक करोड़
(10) कोटिप्प कोटि – $(10,000,000)^3$ इसी प्रकार 1000000x1000000x1000000
(11) नहुत – $(10,000,000)^4$
(12) निन्नहुत – $(10,000,000)^5$
(13) अखोभिनी – $(10,000,000)^6$
(14) बिन्दु – $(10,000,000)^7$
(15) अब्बुद – $(10,000,000)^8$
(16) निरब्बुद – $(10,000,000)^9$
(17) अहह – $(10,000,000)^{10}$
(18) अबब – $(10,000,000)^{11}$
(19) अटट – $(10,000,000)^{12}$
(20) सोगन्धिक – $(10,000,000)^{13}$
(21) उप्पल – $(10,000,000)^{14}$
(22) कुमुद – $(10,000,000)^{15}$
(23) पुंडरीक – $(10,000,000)^{16}$
(24) पदुम – $(10,000,000)^{17}$
(25) कथान – $(10,000,000)^{18}$
(26) महाकथान – $(10,000,000)^{19}$
(27) असंख्येय – $(10,000,000)^{20}$

यहाँ एक करोड़ की संख्या को एक करोड़ से 20 बार गुणा करने का निर्देश है। यहाँ तक की संख्या लगभग 148 अंक की हो जाती है। (धवला पु. 5 सम्प्रति जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग–2 पृ.सं. 214)

विशेष – यहाँ जो असंख्यात कहा जा रहा है वह वास्तविक असंख्यात नहीं है किंतु वैपुल्य वाची होने के कारण उसे असंख्यात नाम दिया है। संख्या तो संख्यात ही है क्योंकि स्वयं आचार्य वीरसेन स्वामी ने दो का तीन बार वर्गित–समवर्गित करने पर छह सौ सत्रह अंक की संख्या को संख्यात ही कहा है और फिर असंख्यात का जो व्यापक रूप है उसे हम आगे कहेंगे ही।

क्षेत्रमान

क्षेत्र के प्रमाणों का निर्देश–

द्रव्य का अविभागी अंश	=	परमाणु
अनंतानंत परमाणु	=	1 अवसन्नासन्न
8 अवसन्नासन्न	=	1 सन्नासन्न
8 सन्नासन्न	=	1 त्रुटरेणु (व्यवहाराणु)
8 त्रुटरेणु	=	1 त्रसरेणु (त्रस जीव के पाँव से उड़ने वाला धूल का कण)
8 त्रसरेणु	=	1 रथरेणु (रथ पहिये से उड़ने वाली धूल का अणु)
8 रथरेणु	=	उत्तम भोगभूमिज मनुष्य का बालाग्र
8 उत्तम भोगभूमिज का बालाग्र	=	मध्यम भोगभूमिज मनुष्य का बालाग्र
8 मध्यम भोगभूमिज का बालाग्र	=	जघन्य भोगभूमिज मनुष्य का बालाग्र
8 जघन्य भोगभूमिज का बालाग्र	=	कर्मभूमिज मनुष्य का बालाग्र
8 कर्मभूमिज बालाग्र	=	1 लिक्षा (लीख)
8 लीख	=	1 जू
8 जू	=	1 यव
8 यव	=	1 उत्सेधांगुल
500 उत्सेधांगुल	=	1 प्रमाणांगुल (भरत ऐरावत क्षेत्र के चक्रवर्ती का अंगुल)
आत्मांगुल	=	जिस देश काल में मनुष्यों का स्वयं का अंगुल
6 विवक्षित अंगुल	=	1 विवक्षित पाद
2 पाद	=	1 बितस्ति
2 बितस्ति	=	1 हस्त
2 हस्त	=	1 किष्कु
2 किष्कु	=	1 दण्ड, युग, धनुष, मूसल या नाली, नाड़ी
2000 दण्ड/धनुष	=	1 कोश
4 कोश	=	1 योजन

500 मानव योजन (उत्सेध योजन/व्यवहार योजन) = 1 प्रमाण योजन (महायोजन या दिव्य योजन)

1 उत्सेध योजन	=	768000 अंगुल

1 प्रमाण योजन गोल व गहरे कुण्ड = 1 व्यवहार पल्य
के आश्रय से उत्पन्न

व्यवहार पल्य x असंख्यात वर्ष = 1 उद्धार पल्य, उद्धार पल्य x असंख्यात वर्ष = अद्धापल्य

$(1 \text{ अद्धापल्य या प्रमाण योजन}^3)^{\text{छे}}$ = 1 सूच्यंगुल

1 सूच्यंगुल^2 = 1 प्रतरांगुल

1 सूच्यंगुल^3 = 1 घनांगुल

$(\text{घनांगुल})^{\text{अद्धापल्य+असंख्यात}}$ = जगत्श्रेणी

अथवा $(\text{घनांगुल})^{\text{छे+असं.}}$ = जगत्श्रेणी

जगत्श्रेणी ÷ 7 = 1 रज्जू

$(\text{जगत्श्रेणी})^2$ = 1 जगत्प्रतर

$(\text{जगत्श्रेणी})^3$ = 1 जगत्घन या घनलोक

तौल की अपेक्षा द्रव्यमाण –	[राजवार्तिक ग्रन्थ से]
4 महा अधिक तृण फल–	1 श्वेत सर्षप फल
16 श्वेत सर्षप फल–	1 धान्यमाष फल
2 धान्यमाष फल–	1 गुंजाफल
2 गुंजाफल –	1 रूप्यमाष फल
13 रूप्यमास फल–	1 धरण
2½ धरण–	1 सुवर्ण या 1 कंस
4 सुवर्ण या 4 कंस–	1 पल
100 पल–	1 तुला या अर्धकंस
3 तुला या 3 अर्ध कंस–	1 कुडब (पुसेरा)
4 कुडब (पुसेरे)–	1 प्रस्थ (सेर)
4 प्रस्थ (सेर)–	1 आढक
4 आढक–	1 द्रोण
16 द्रोण–	1 खारी
20 खारी–	1 वाह

[राजवार्तिक अ.सं.–3, सूत्र–38, पृ.सं. 205 सम्प्रति जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग–2 पृ.सं. 215]

कालमान

काल प्रमाण की अपेक्षा से भेद –

(1) समय = एक परमाणु के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश पर मंद गति से जाने का काल*

(2) जघन्य युक्तासंख्यात समय = 1 आवली

(3) संख्यात आवली = $\frac{2880}{3773}$ सैकेण्ड = 1 उच्छ्वास या प्राण

(4) 7 उच्छ्वास = $5\frac{184}{539}$ सैकेण्ड = 1 स्तोक

(5) 7 स्तोक = $37\frac{31}{77}$ सैकेण्ड = 1 लव

(6) 38½ लव = 24 मिनिट = 1 नाली (घड़ी)

(7) 2 नाली (घड़ी) = 48 मिनिट = 1 मुहूर्त

मुहूर्त – एक समय = भिन्न मुहूर्त (उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त)
(भिन्न मुहूर्त–1 समय) को उत्कृष्ट तथा (आवली+1समय) को
जघन्य अन्तर्मुहूर्त*

(8) 30 मुहूर्त = 24 घण्टे = 1 अहोरात्र = (1 दिन)

(9) 15 अहोरात्रि = 1 पक्ष

(10) 2 पक्ष = 1 मास

(11) 2 मास = 1 ऋतु

(12) 3 ऋतु = 1 अयन

(13) 2 अयन = 1 संवत्सर (एक वर्ष)

(14) 5 वर्ष = 1 युग

(15) 2 युग = दस वर्ष

(16) दस वर्ष × 10 = शत वर्ष

(17) शत वर्ष × 10 = सहस्र वर्ष

(18) सहस्र वर्ष × 10 = दस सहस्र वर्ष

(19) दस सहस्र वर्ष × 10 = लक्ष वर्ष

(20) लक्ष वर्ष × 84 = पूर्वांग (100000 वर्ष × 84 = 8400000 या 84 लाख वर्ष]

(21) $(\text{पूर्वांग})^2/(84 \text{ लाख वर्ष})^2$ = पूर्व [84 लाख × 84 लाख अथवा 70560000000000 वर्ष]

(22) पूर्व × 84 = पर्वांग [एक पूर्व × 84 अथवा 5927040000000000 वर्ष]

(23) पर्वांग×84 लाख = पर्व [एक पर्वांग×84 लाख=497871360000000000000 वर्ष]

(24) पर्व×84=नयुताङ्ग [4182119424×15 शून्य अथवा 4182119424×10^{15} प्रमाण वर्ष]

नोट–*व्यवहार काल द्रव्य की सबसे छोटी इकाई जिसका दूसरा भाग न किया जा सके उसे समय कहते हैं।

*(भिन्न मुहूर्त–1 समय) को उत्कृष्ट तथा (आवली+1 समय) को जघन्य अन्तर्मुहूर्त कहते हैं, मतान्तर से आवली के असंख्यात वे भाग को भी अन्तर्मुहूर्त कहा गया है। भिन्न मुहूर्त–एक समय इसे उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कहा गया है, इसके बीच के अन्तर्मुहूर्त के असंख्यात भेद जानने चाहिए।

(25) नयुताङ्ग×84 लाख=नयुत [351298031616×20 शून्य अथवा 351298031616×10^{20}]

(26) नयुत×84=कुमुदाङ्ग [29509034655744×20 शून्य अथवा 29509034655744×10^{20}]

(27) कुमुदाङ्ग × 84 लाख = कुमुद [2478758911082496 ×10^{25} × प्रमाण वर्ष]

(28) कुमुद × 84 = पद्माङ्ग [208215748530929664 × 10^{25} प्रमाण वर्ष]

(29) पद्माङ्ग × 84 लाख = पद्म [17490122876598091776 × 30 शून्य या 10^{30} प्रमाण वर्ष]

(30) पद्म×84 = नलिनाङ्ग [1469170321634239709184 × 30 शून्य या 10^{30} प्रमाण वर्ष]

(31) नलिनांग×84 लाख=नलिन [123410307017276135571456×35 शून्य या 10^{35} प्रमाण वर्ष]

(32) नलिन×84 = कमलाङ्ग [10366465789451195388002304×35 शून्य या 10^{35} प्रमाण वर्ष]

(33) कमलाङ्ग × 84 लाख = कमल [870783126313900412592193536 × 40 शून्य या 10^{40} प्रमाण वर्ष]

(34) कमल×84 = त्रुटिताङ्ग [73145782610367634657744257024×40 शून्य या 10^{40} प्रमाण वर्ष]

(35) त्रुटिताङ्ग × 84 लाख = त्रुटित [6144245739270881311260517590016 × 45 शून्य या 10^{45} प्रमाण वर्ष]

(36) त्रुटित × 84 = अटटाङ्ग [516116642098754030145043477561344 × 45 शून्य या 10^{45} प्रमाण वर्ष]

(37) अटटाङ्ग × 84 लाख = अटट [43353787936295388532183652115152896 × 50 शून्य या 10^{50} प्रमाण वर्ष]

(38) अटट × 84 = अममांग [3641719026648808436703426777672843264 ×50 शून्य या×10^{50} प्रमाण वर्ष]

(39) अममांग × 84 लाख = अमम [30590439823849990868308784932451 8834176 × 55 शून्य या×10^{55} प्रमाण वर्ष]

(40) अमम × 84 = हाहांग [25695969452033992329379379343259582070784× 55 शून्य या×10^{55} प्रमाण वर्ष]

(41) हाहांग × 84 लाख = हाहा [21584614339705535566786786483380489 3945 856 × 60 शून्य या×10^{60} प्रमाण वर्ष]

(42) हाहा × 84 = हूहांग [1813107604535518498761009006460396110914519 04×60 शून्य या×10^{60} प्रमाण वर्ष]

(43) हूहांग × 84 लाख = हूहू [15230103878098355389592475654267327331681959936 × 65 शून्य या×10^{65} प्रमाण वर्ष]

(44) हूहू × 84 = लतांग [1279328725760261852725767954958455 495861284634624×65 शून्य या$\times 10^{65}$ प्रमाण वर्ष] अर्थात् 114 अंक प्रमाण।

(45) लतांग × 84 लाख = लता [10746361296386199562896450821651026 1652347909308416×70 शून्य या$\times 10^{70}$ प्रमाण वर्ष] अर्थात् 121 अंक प्रमाण।

(46) लता × 84 लाख = महालतांग [90269434889644076328330186901868619 78797224381906944×70 शून्य या$\times 10^{70}$ प्रमाण वर्ष]

(47) महालतांग×84 लाख = महालता [75826325307301024115797356997962 64062186966898080183296 × 75 शून्य या$\times 10^{75}$ प्रमाण वर्ष]

(48) महालता × 84 लाख = श्री कल्प [636941132581328602572697798779584 9512239315238735396964 × 80 शून्य या$\times 10^{80}$ प्रमाण वर्ष]

(49) श्री कल्प × 84 लाख = हस्तप्रहेलित [53503055136831602616106615097485 13842281030080053773336576 × 85 शून्य या$\times 10^{85}$ प्रमाण वर्ष]

(50) हस्तप्रहेलित × 84 लाख = अचलात्म [44942566314938546197529556681 88751627516065267267245169602723 84×90 शून्य या $\times 10^{90}$ प्रमाण वर्ष] यह अचलात्म नाम का कालांश होता है

अथवा – अचलात्म = 84^{31}× 90 शून्य। यह कालांश अर्थात् अचलात्म 150 अंक प्रमाण वर्षों का है।

नोट– (1) यदि किसी संख्या में त्रुटि दिखाई दे तो उस संख्या के नम्बर को 84 पर घात चढ़ाकर तथा जो नंबर है उससे यदि सम संख्या है तो आधी करके एक जोड़े तथा संख्या को पाँच बार पाँच शून्यों से गुणाकर प्राप्त शून्यों को संख्या के आगे स्थापित करें तो संख्या प्राप्त हो जायेगी जैसे 10वें नम्बर की संख्या पद्माङ्ग निकालना है तो 84^{10}×30 शून्य किंतु गणना लक्ष वर्ष से करना चाहिए।

यदि विषम संख्या है तो जिस नंबर की संख्या है उसे 84 पर घात लगाकर तथा जो नम्बर है उसमें एक जोड़ कर उसे सम बना ले पुन: आधा करें और पाँच शून्यों से गुणा कर दें संख्या प्राप्त हो जायेगी।

नोट– यह सूत्र महालता तक ही कार्यकारी होगा।

इस प्रकार वर्षों की गणना द्वारा जहाँ तक उत्कृष्ट संख्यात प्राप्त हो वहाँ तक इस संख्यात काल को ले जाना चाहिए। ये सारे विकल्प मध्यम संख्यात के अन्तर्गत आते हैं।

[धवला पु.-3 व 5, ति.प., रा.वा. से सम्प्रति जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश-2 पृ.सं.-216]

दूसरे प्रकार से काल प्रमाण निर्देश

असंख्यात समय =	1 निमेष
15 निमेष =	1 काष्ठा (2 सैकण्ड)
20 काष्ठा =	1 कला (1 मिनट)
कुछ अधिक 20 कला (24 मिनट) (महाभारत की अपेक्षा 15 कला) =	1 घटिका (1 घड़ी)
2 घड़ी (महाभारत की अपेक्षा 3 कला + 3 काष्ठा) =	1 मुहूर्त
1 मिनट =	60 सैकण्ड
24 सैकण्ड =	1 पल
60 पल (24 मिनट) =	1 घड़ी
1 मिनिट =	540000 प्रतिविपलांश
60 प्रतिविपलांश =	प्रतिविपल
60 प्रतिविपल =	1 विपल
60 विपल =	1 पल
60 पल =	1 घड़ी

[पंचास्तिकाय, तत्त्वार्थ वृत्ति से सम्प्रति जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग-2, पृ.सं. 217]

इस अध्याय में द्रव्य, क्षेत्र, काल मान को जाना

आगे के अध्याय में विशेष रूप से द्रव्यमान में संख्या प्रमाण की सिद्धि करेंगे...

(i) संख्यात (ii) असंख्यात (iii) अनंत तथा अनंतानंत की व्यापकता व उसकी सिद्धि की जायेगी।

अभाव में कूलना नहीं,
प्रभाव में फूलना नहीं,
यही सच्चे साधू की पहचान है1

अध्याय – 4

संख्या प्रमाण

संख्यात, असंख्यात व अनन्त के भेद से संख्या प्रमाण तीन प्रकार का है।

(1) संख्यात – जितने विषयों को श्रुतज्ञान जानता है उसे संख्यात कहते हैं।

(2) असंख्यात – जितने विषयों को अवधिज्ञान व मन:पर्ययज्ञान प्रत्यक्ष जानता है उसे असंख्यात कहते हैं।

(3) अनंत – जितने विषयों को केवलज्ञान युगपत् प्रत्यक्ष जानता है उसे अनंत कहते हैं। अनंत के दो भेद हैं – (1) सक्षय अनंत (2) अक्षय अनंत।

सक्षय अनंत – जो राशि या काल, व्यय होते–होते अन्त को प्राप्त हो जाए वह सक्षय अनंत कहलाता है।

अक्षय अनंत – आय के बिना व्यय होते रहने पर भी जिस राशि/काल का अन्त न हो वह अक्षय अनंत कहलाता है।

संख्यात एक ही प्रकार का है किन्तु परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यात के भेद से असंख्यात तीन प्रकार का है तथा परीतानन्त, युक्तानन्त और अनन्तानंत के भेद से अनन्त भी तीन प्रकार का है। इस प्रकार तीनों के कुल 7 भेद हुए। ये सातों ही स्थान जघन्य, मध्यम व उत्कृष्ट के भेद से तीन–तीन प्रकार के हैं। अत: 7 × 3 = 21 भेद संख्या मान के होते हैं।

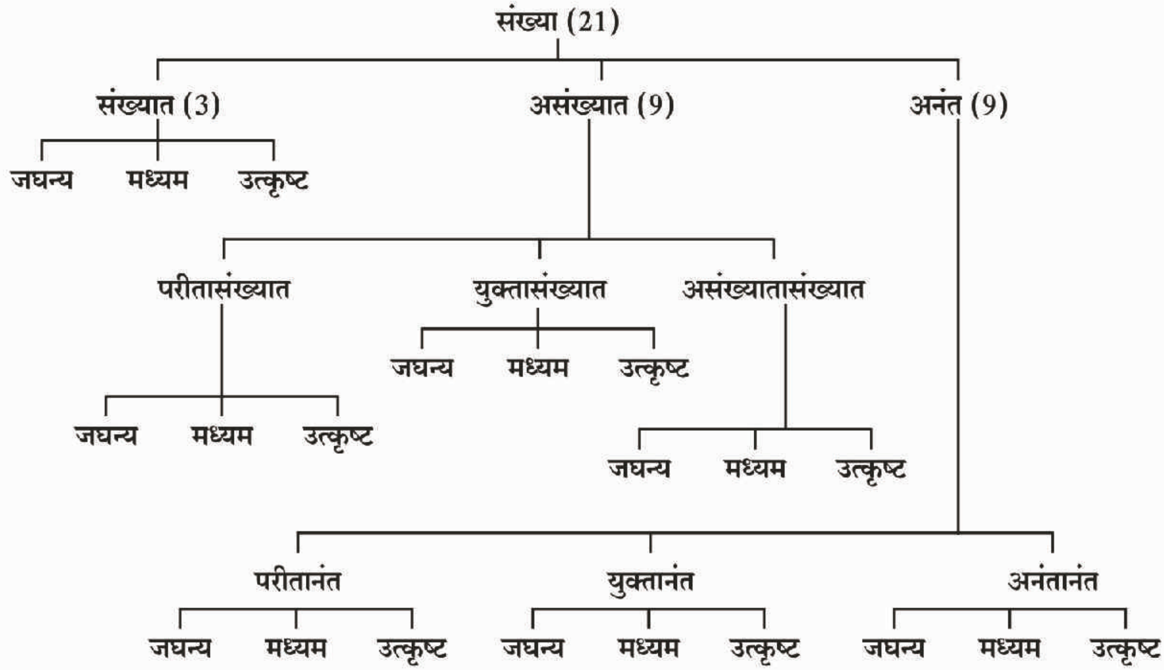

1. जघन्य संख्यात – एक में एक का भाग देने से या गुणा करने से कुछ भी हानि वृद्धि नहीं होती। अत: संख्या का प्रारम्भ दो के अंक से होता है और इसलिए जघन्य संख्यात का प्रमाण 2 है।

2. मध्यम संख्यात – 3, 4, 5 आदि से लेकर एक कम उत्कृष्ट संख्यात पर्यंत के सम्पूर्ण भेदों को मध्यम संख्यात कहते हैं।

3. उत्कृष्ट संख्यात – एक कम जघन्य परीतासंख्यात को उत्कृष्ट संख्यात कहते हैं। अत: जघन्य परीतासंख्यात–1 = उत्कृष्ट संख्यात।

4. जघन्य परीतासंख्यात – जघन्य परीतासंख्यात के प्रमाण का ज्ञान कराने के लिए अनवस्था, शलाका, प्रतिशलाका और महाशलाका इन चार कुण्डों की कल्पना की गई है। ये चारों कुण्ड गोल जम्बूद्वीप के समान एक लाख योजन व्यास एक हजार योजन गहरे होते हैं। जम्बूद्वीप सदृश प्रथम अनवस्था कुण्ड को गोल सरसों से शिखा तक भरने पर 46 अंक प्रमाण प्राप्त होता है। माना प्रथम अनवस्था कुण्ड [46 अंक प्रमाण संख्या के स्थानीय] 10 सरसों से भरा था, अत: बढ़ते हुए व्यास के साथ 10 अनवस्था कुण्डों के भर जाने पर एक बार शलाका कुण्ड भरेगा तब एक सरसों का दाना प्रति शलाका कुण्ड में डाला जायेगा। इसी प्रकार वृद्धिगत व्यास के साथ 10 का वर्ग अर्थात् 100 अनवस्था कुण्डों के भर जाने पर 10 बार शलाका कुण्ड भरेगा तब एक बार प्रतिशलाका कुण्ड भरेगा तब तक एक दाना महाशलाका कुण्ड में डाला जायेगा। इसी प्रकार बढ़ते हुए व्यास के साथ 10 के घन अर्थात् 1000 अनवस्था कुण्डों के भर जाने पर 10 के वर्ग अर्थात् 100 बार शलाका कुण्ड भरेगा तब 10 बार प्रतिशलाका कुण्ड भरेगा और तब एक बार महाशलाका कुण्ड भरेगा। इस प्रकार इस अन्तिम अनवस्था कुण्ड में शिखा सहित गोल सरसों की जितनी संख्या प्राप्त होती है वही संख्या जघन्य परीतासंख्यात की है।

शंका–व्यास की वृद्धि किस प्रकार होती है?

समाधान–प्रथम अनवस्था कुण्ड के सरसों के दाने किसी देव के माध्यम से एक–एक द्वीप–समुद्र में डाले जाये जहाँ पर सरसों खत्म हो जाये तो द्वितीय बार के अनवस्था कुण्ड का व्यास उतना होगा उसे गोल सरसों से शिखा तक भरें पश्चात् पुन: आगे के द्वीप समुद्रों में डालें जहाँ समाप्त हो जाएँ पुन: वहाँ से गोल व्यास वाला तृतीय अवस्था कुण्ड बनेगा पुन: उसे गोल सरसों से शिखा तक भरें और आगे के द्वीप समुद्रों में डालें जहाँ सरसों समाप्त हो जाएँ वहाँ से पुन: गोल अनवस्था बनावे इसी प्रकार अन्तिम अनवस्था तक ले जाना चाहिए। जब एक बार अनवस्था कुण्ड बनावें तो एक सरसों शलाका कुण्ड में डाले पश्चात् जब दूसरी बार अनवस्था कुण्ड बनावें तो दूसरा सरसों का दाना शलाका कुण्ड में डालें, इसी प्रकार शलाका कुण्ड को भरे तथा अनवस्था कुण्ड का व्यास अब तक संख्यात योजन का हो चुका है उसमें सरसों भी संख्यात ही भरे हैं।

शंका–त्रिलोकसार में उसे असंख्यात योजन का क्यों कहा है?

समाधान–वहाँ असंख्यात योजन वैपुल्यवाची संख्या होने के कारण कहा जा सकता है अथवा छपाई में गलती हो सकती है क्योंकि वहाँ असंख्यात संभव ही नहीं है। असंख्यात जब अन्तिम कुण्ड बनेगा उसमें गोल सरसों की संख्या होगी किन्तु वह भी संख्यात योजन का ही है, क्योंकि सरसों की संख्या जघन्य परीतासंख्यात है जिसमें से एक कम करने पर उत्कृष्ट संख्यात होता है वह सरसों संख्यात योजन में ही भरी जाती है और अन्तिम कुण्ड अभी बहुत दूर है।

जब शलाका कुण्ड एक बार भर जाये तो प्रतिशलाका कुण्ड में एक दाना डाला जाए पश्चात् शलाका कुण्ड खाली करके दूसरी बार इसी प्रकार भरा जाए जब दूसरी बार भर जाए तो दूसरा दाना प्रतिशलाका में डालें, जब प्रतिशलाका भर जाए तो एक दाना महाशलाका में डालें पुन: प्रतिशलाका खाली करके दूसरी बार इसी क्रम से भरें पुन: एक दाना महाशलाका कुण्ड में डाले इस प्रकार जब महाशलाका भर जाए उस समय जो अनवस्था कुण्ड जितने व्यास का बना है उसे गोल सरसों से भरें उन सरसों को किसी देव की सहायता से गिनाया जाये वह संख्या जघन्य परीतासंख्यात होती है।

अनवस्था कुण्ड 1000 बार भरेगा, शलाका कुण्ड 100 बार भरेगा, प्रतिशलाका कुण्ड 10 बार भरेगा तब महाशलाका कुण्ड 1 बार भरेगा।

नोट–यह केवल एक मानक है किन्तु संख्यात बार भरा जाता है।

5. मध्यम परीतासंख्यात = जघन्य परीतासंख्यात से एक आदि अंक द्वारा वृद्धि को प्राप्त तथा उत्कृष्ट परीतासंख्यात से एक अंक हीन होने तक के जितने विकल्प हैं, वे सब मध्यम परीतासंख्यात हैं।

6. उत्कृष्ट परीतासंख्यात = जघन्य युक्तासंख्यात में से एक कम कर देने पर उत्कृष्ट परीतासंख्यात प्राप्त होता है। **अत: जघन्य युक्तासंख्यात – 1 = उत्कृष्ट परीतासंख्यात।**

7. जघन्ययुक्तासंख्यात = जघन्य परीतासंख्यात का विरलन कर प्रत्येक एक एक अंक पर जघन्य परीतासंख्यात ही देय देकर परस्पर गुणा करने से जो लब्ध प्राप्त होता है उतनी संख्या प्रमाण जघन्ययुक्तासंख्यात प्राप्त होता है। जो आवली सदृश है अर्थात् **जघन्ययुक्तासंख्यात = 1 आवली।**

जैसे–अंक संदृष्टि से माना कि = जघन्य परितासंख्यात = 8, इसका विरलन कर $8^1 x 8^1 x 8^1 x 8^1 x 8^1 x 8^1 x 8^1 x 8^1$ उसी को देय देकर परस्पर गुणा करने से = 16779216 (जघन्य युक्तासंख्यात)

सूत्र–जघन्ययुक्ता संख्यात = (जघन्य परीतासंख्यात)$^{(\text{जघन्य परीता संख्यात})}$ = आवली

8. मध्यमयुक्तासंख्यात = जघन्ययुक्तासंख्यात से एक अधिक और उत्कृष्ट युक्तासंख्यात से एक कम करने पर जितने विकल्प बनते हैं, वे सब मध्यम युक्तासंख्यात हैं।

9. उत्कृष्ट युक्तासंख्यात = जघन्य असंख्यातासंख्यात में से एक घटाने पर जो प्राप्त होता है, वह उत्कृष्ट युक्तासंख्यात का प्रमाण है।

सूत्र – उत्कृष्टयुक्तासंख्यात = जघन्य असंख्यातासंख्यात – 1

10. जघन्य असंख्यातासंख्यात = आवली जो जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण है, उसकी कृति [वर्ग] करने पर जघन्य असंख्यातासंख्यात का प्रमाण प्राप्त होता है।

सूत्र – जघन्य असंख्यातासंख्यात = (जघन्य युक्तासंख्यात)^2 = (आवली)^2

11. मध्यम असंख्यातासंख्यात – जघन्य असंख्यातासंख्यात से एक आदि अंक द्वारा वृद्धि को प्राप्त तथा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात से एक अंक हीन तक के जितने विकल्प हैं, वे सब मध्यम असंख्यातासंख्यात हैं।

12. **उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात =** जघन्य परीतानंत में से एक घटाने पर जो प्राप्त होता है, वह उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात का प्रमाण है।

सूत्र – उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात = जघन्य परीतानन्त – 1

13. **जघन्य परीतानन्त –** जघन्य असंख्यातासंख्यात राशि के शलाका त्रय निष्ठापन की समाप्ति होने पर जो मध्यम असंख्यातासंख्यात राशि उत्पन्न हो उस महाराशि में धर्मद्रव्य के असंख्यात प्रदेश, अधर्मद्रव्य के असंख्यात प्रदेश, एक जीव के असंख्यात प्रदेश, लोक के असंख्यात प्रदेश, लोक से असंख्यात गुणा अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवों का प्रमाण एवं अप्रतिष्ठित जीव राशि से असंख्यात लोक गुणे प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवों का प्रमाण इन छह राशियों को मिलाने पर जो राशि उत्पन्न हो उसका पुन: शलाकात्रय निष्ठापन करना चाहिए। इसके बाद उत्पन्न महाराशि में बीस कोडाकोडी सागर प्रमाण कल्पकाल के समय, इससे भी असंख्यात लोक गुणे स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान, इससे भी असंख्यात गुणे अनुभाग बंधाध्यवसायस्थान और इनसे भी असंख्यात गुणे योग के उत्कृष्ट अविभाग प्रतिच्छेद स्वरूप ये चार राशियाँ मिलाकर पूर्वोक्त प्रकार पुन: शलाकात्रय (तीन बार) निष्ठापन करने से जो महाराशि उत्पन्न होती है, वही जघन्य परीतानन्त का प्रमाण है।

शंका–शलाका त्रय किसे कहते हैं ?

समाधान–किसी भी राशि को विरलन देय व शलाका रूप से स्थापन कर लो पश्चात् विरलन के ऊपर उसी राशि को देय देकर आपस में गुणा करें और एक शलाका कम कर दें, पश्चात् जो महाराशि उत्पन्न हो उसका विरलन करें व उसी को देय देकर आपस में गुणा करें तथा एक शलाका कम करें दें। पश्चात् जो महाराशि उत्पन्न हो उसका पुन: विरलन करें व देय देकर गुणा करें तथा एक शलाका कम कर दें इसी प्रकार इसी क्रम से सम्पूर्ण शलाका समाप्त होने तक यह क्रिया करते जाएँ अन्त में जो महाराशि उत्पन्न हो उसको पुन: विरलन, देय, शलाका रूप से स्थापन करें व उसी प्रकार गुणा करते जाएँ और शलाका घटाते जाए। जब दूसरी बार भी सभी शलाका समाप्त होने पर जो महाराशि आती है उसको पुन: विरलन, देय, शलाका रूप से स्थापन करके गुणा करें व एक–एक शलाका कम करें इसी क्रम से विरलन देय रूप क्रिया व गुणा करते करते सम्पूर्ण शलाका समाप्त हो जाएँ तब जो महाराशि उत्पन्न हुई है वही राशि शलाका निष्ठापन से प्राप्त हुई है इसी को शलाकात्रय निष्ठापन कहते हैं।

14. **मध्यम परीतानन्त –** जघन्य परितानन्त से एकादि अंक द्वारा वृद्धि को प्राप्त तथा उत्कृष्ट परितानन्त से एक अंकहीन तक के जितने विकल्प हैं, वे सब मध्यम परीतानन्त है।

15. **उत्कृष्ट परीतानन्त –** जघन्य युक्तानन्त में से एक अंक कम कर देने पर उत्कृष्ट परितानन्त प्राप्त होता है।

सूत्र – उत्कृष्ट परीतानन्त = जघन्य युक्तानन्त – 1

16. **जघन्य युक्तानन्त –** जघन्य परीतानन्त का विरलन कर प्रत्येक अंक पर जघन्य परीतानंत देय देकर परस्पर गुणा करने से जो लब्ध प्राप्त हो उतनी संख्या प्रमाण जघन्य युक्तानन्त होता है। जो कि अभव्य राशि के सदृश है।

सूत्र – अभव्य राशि=जघन्य युक्तानन्त = (जघन्य परीतानन्त)$^{\text{जघन्य परीतानंत}}$

इसका तात्पर्य है कि जघन्य परीतानंत से जघन्य परीतानंत का जघन्य परीतानंत बार गुणा करने पर प्राप्त राशि। माना कि जघन्य परीतानंत की राशि 10 है अर्थात् $(10)^{10}$=10x10x10x10x10x10x10 x10x10x10=10000000000= अभव्य राशि

17. **मध्यम युक्तानन्त** – जघन्य युक्तानन्त से एक अंक अधिक और उत्कृष्ट युक्तानन्त से एक अंकहीन करने पर जो प्रमाण प्राप्त होता है, वह सब मध्यम युक्तानन्त हैं।

18. **उत्कृष्ट युक्तानन्त** – जघन्य अनंतानंत में से एक घटाने पर जो लब्ध प्राप्त होता है वह उत्कृष्ट युक्तानन्त है।

सूत्र – उत्कृष्ट युक्तानन्त = जघन्य अनंतानंत – 1

19. **जघन्य अनंतानंत** – जघन्य युक्तानन्त का वर्ग [कृति] करने पर जघन्य अनंतानंत प्राप्त होता है।

सूत्र –जघन्य अनंतानंत = (जघन्य युक्तानंत)^2

20. **मध्यम अनंतानंत** – जघन्य अनंतानंत से एक अंक अधिक और उत्कृष्ट अनंतानंत से एक अंकहीन तक के सभी विकल्प मध्यम अनंतानंत हैं।

21. **उत्कृष्ट अनंतानंत** – जघन्य अनंतानंत स्वरूप महाराशि का शलाकात्रय निष्ठापन करने से जो मध्यम अनंतानंत उत्पन्न होता है, उसमें सम्पूर्ण जीव के अनंतवें भाग प्रमाण सिद्ध राशि, इससे अनंतगुणी निगोद राशि, सम्पूर्ण वनस्पतिकायिक राशि, जीव राशि से अनंत गुणी पुद्गल राशि, उससे भी अनंतगुणे तीनों काल के समय और काल राशि से अनंत गुणी अलोकाकाश की प्रदेश राशि अर्थात् अनंत स्वरूप इन छह राशियों का क्षेपण करने से जो योगफल उत्पन्न हो उसका पुन: शलाका त्रय निष्ठापन करने से उत्पन्न होने वाली महाराशि में धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य के अगुरुलघुगुण के अविभागी प्रतिच्छेद मिलाने से उत्पन्न होने वाली राशि का पुन: शलाकात्रय निष्ठापन करने से जो महाराशि रूप लब्ध प्राप्त होगा वह भी केवलज्ञान के बराबर नहीं होगा, अत: केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों में से उक्त महाराशि घटा देने पर जो लब्ध उपलब्ध हो उसे वैसे का वैसा उसी में मिला देने पर केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों के प्रमाण स्वरूप उत्कृष्ट अनंतानंत प्राप्त होता है।

जैसे–केवलज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेद स्वरूप महाराशि अनंत का मानक 500 है तथा सम्पूर्ण शलाका त्रय निष्ठापन से प्राप्त राशि का प्रमाण 200 है जो केवलज्ञान के अनंतवे भाग है अत: उत्कृष्ट अनंतानंत स्वरूप केवलज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेद 500–200 शलाका त्रय से प्राप्त राशि =300 पुन: उसे उसी में मिलाने पर 300+200=500 उत्कृष्ट अनंतानंत प्राप्त हुआ।

अवस्था कुण्ड में शिखा सहित सरसों का प्रमाण

अनवस्था कुण्ड का व्यास = जम्बूद्वीप प्रमाण अर्थात् 1 लाख योजन

परिधि = 3 लाख योजन, गहराई = 1000 योजन

इस कुण्ड का क्षेत्रफल = परिधि x $\frac{\text{व्यास}}{4}$ = 3 ला. x $\frac{\text{1 ला.}}{4}$

इस कुण्ड का घनफल = परिधि x $\frac{\text{व्यास}}{4}$ x गहराई

= 3 ला. x $\frac{\text{1 ला.}}{4}$ x 1000 घन प्रमाण योजन

प्रमाण योजन को व्यवहार योजन में बदलने के लिए–

1 प्रमाण योजन = 500 व्यवहार योजन

घन राशि होने के कारण घनरूप ही गुणकार होगा।

अतः 3 ला. x $\frac{\text{1 ला.}}{4}$ x 1000 x 500^3 घन व्यवहार योजन

व्यवहार योजन को अंगुल में बदलने के लिए–

1 योजन = 4 कोस, 1 कोस = 2000 धनुष, 1 धनुष = 4 हाथ, 1 हाथ = 24 अंगुल इन सबका परस्पर गुणा करने पर 1 योजन के अंगुल प्राप्त होते है।

अतः 4x2000x4x24 = 768000 अंगुल

घनराशि का गुणकार व भागहार घनरूप ही होता है।

अतः 3 ला. x $\frac{\text{1 ला.}}{4}$ x 1000 x 500^3 x 768000^3 व्यवहार अंगुल

व्यवहार अंगुल को चौकोर सरसों में बदलने के लिए–

1 अंगुल = 8 यव, 1 यव = 8 चौकोर सरसों

अतः 8^3x8^3 से उपर्युक्त व्यवहार अंगुल से गुणा करेंगे।

अतः 3 ला. x $\frac{\text{1 ला.}}{4}$ x 1000 x 500^3 x 768000^3 x 8^3 x 8^3

चौकोर सरसों के प्रमाण को गोल सरसों में बदलने के लिए 9/16 भाग दिया जाता है। क्योंकि चौकोर वस्तु के घनफल में 9/16 का भाग देने पर गोल वस्तु का प्रमाण प्राप्त होता है।

नियम–भागहार का हार अंश का गुणकार हो जाता है, इस नियम के अनुसार 16 भी गुणकार हो जावेगा।

अतः $\frac{300000 \times 100000 \times 1000 \times 500^3 \times 768000^3 \times 8^3 \times 8^3 \times 16}{4 \times 9}$

अथवा $\frac{300000 \times 100000 \times 1000 \times 500 \times 500 \times 500 \times 768000 \times 768000 \times 768000 \times 8 \times 8 \times 8 \times 8 \times 8 \times 8 \times 16}{4 \times 9}$

उपरिम 8 अंकों में से एक 8 का गुणनखण्ड करने पर 2x2x2 प्राप्त होता है। 500 का गुणकार तीन बार है अत: प्रत्येक 500 को 2 से गुणा करने पर तीन स्थान पर 1000 गुणकार प्राप्त होता है।

प्रत्येक 1000 में तीन-तीन शून्य है, इसलिए तीन स्थानों के एक-एक हजार के 9 शून्य + एक हजार गहराई के 3 शून्य+तीन स्थानों पर स्थित 768000 के 9 शून्य + तीन लाख के 5 शून्य + एक लाख के 5 शून्य इन सर्व शून्यों को मिलाने पर (9+3+9+5+5) = 31 शून्य प्राप्त हुई।

शेष संख्या = $\frac{16x3x768x768x768x8x8x8x8x8}{9x4}$ इस संख्या के आगे 31 शून्य रखना चाहिए।

उपरिम पाँच बार आठ के अंकों में से एक 8 के अंक का गुणनखण्ड करने पर 2x2x2 प्राप्त होते हैं। इन तीनों 2 को उपरिम तीन 8 के अंकों से गुणित करने पर 8x2, 8x2, 8x2 = 16x16x16 प्राप्त हुए।

इन तीनों 16 के अंकों को उपरिम 16 के अंक से गुणा करने पर 16x16x16x16=65536 प्राप्त होते है।

प्रत्येक 768 के 256x3 गुणनखण्ड होते हैं। अर्थात् 768=256x3, 768=256x3, 768 = 256x3= 256x256x256x3x3x3=65536x256x9x3 गुणनखण्ड प्राप्त हुए।

पहले के 65536 को इस 65536 से गुणा करने पर बादाल (4294967296) प्राप्त होता है। बादाल को (42=) ऐसे भी लिखा जाता है।

$\frac{(42 =)x256x9x3x8x3}{9x4}$ = (42=)x256x9x2 क्योंकि यहाँ पर अंश के 9 हर के 9 का छेद हुआ और हर के 4 से अंश के 8 का

छेद करने पर 2 का अंक प्राप्त हुआ।

अत: गोल सरसों का प्रमाण (अनवस्था कुण्ड में) = (42 = (बादाल)x256x9x2 और 31 शून्य)

अर्थात् 42 = (बादाल) x256x18 और 31 शून्य अर्थात् 4294967296x256x18 और 31 शून्य

= 19791209299968000000000000000000000000000000 यह जम्बूद्वीप सदृश प्रथम अनवस्था कुण्ड के गोल सरसों का प्रमाण है।

जम्बूद्वीप सदृश कुण्ड के ऊपर की राशि के शिखाफल के गोल सरसों का प्रमाण

आकाश को व्याप्त करने वाली तिल, सरसों आदि वस्तुओं की शिखाऊ राशि परिधि के ग्यारहवें भाग प्रमाण होती है। अत: पूर्व की लब्ध राशि में 11 का भाग देने से यह प्रमाण प्राप्त होता है।

अत: $\frac{\text{बादाल x256x18x31 शून्य}}{11}$

अर्थात् $\frac{197912092999680000000000000000000000000000000000}{11}$

$=1799200845451636363636363636363636363636363636\frac{4}{11}$

यह कुण्ड की शिखा के सरसों का प्रमाण प्राप्त हुआ।

शिखा सहित अनवस्था कुण्ड के सरसों का प्रमाण =

शिखा रहित अनवस्था कुण्ड के सरसों का प्रमाण + कुण्ड की शिखा के सरसों का प्रमाण

$=1997112938451316363636363636363636363636363636\frac{4}{11}$

यह प्रथम अनवस्था कुण्ड के शिखा सहित सरसों के अंकों का प्रमाण है।

नोट–इन्हीं संख्यात असंख्यात अनंत की विशेष सिद्धि के लिए चौदह धाराओं की व्याख्या अगले अध्याय में करेंगे।

हितकारी वचन कठोर हो सकते हैं पर अभद्र नहीं।

अध्याय–5

धाराएँ

संख्यात, असंख्यात और अनंत की सिद्धि करने के लिए 14 धाराएँ कही गयी हैं। वे 14 धाराएँ हैं – (1) सर्वधारा, (2) समधारा, (3) विषमधारा, (4) कृतिधारा (5) अकृतिधारा, (6) घनधारा, (7) अघनधारा, (8) वर्गमातृकधारा, (9) अवर्गमातृकधारा, (10) घनमातृकधारा, (11) अघनमातृकधारा (12) द्विरूपवर्गधारा (13) द्विरूपघनधारा, (14) द्विरूपघनाघनधारा।

1. सर्वधारा – एक अंक को आदि लेकर उत्कृष्ट अनंतानंत प्रमाण केवलज्ञान पर्यंत संख्याओं को सर्वधारा कहते हैं।

विशेष–यहाँ केवलज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेद जो कि उत्कृष्ट अनंतानंत हैं, उनका एक मानक माना है जो कि 65536 है।

जैसे – 1, 2, 3, 4................ 65535, 65536 [अंक संदृष्टि से मान]

प्रथम स्थान =1 है। और **अन्तिम स्थान** = 65536 (केवलज्ञान स्वरूप उत्कृष्ट अनंतानंत) सर्वधारा के कुल स्थान केवलज्ञान प्रमाण हैं। सम आदि शेष तेरह धाराएँ इसी सर्वधारा से उत्पन्न हुई हैं।

2. समधारा – 2 के अंक से आरम्भ कर दो–दो की वृद्धि को प्राप्त होते हुए केवलज्ञान पर्यंत समधारा होती है।

जैसे – 2,4,6,8 .... 65534, 65536 [अंक संदृष्टि से मान]

प्रथम स्थान = 2 व **अन्तिम स्थान** = 65536 (केवलज्ञान स्वरूप उत्कृष्ट अनंतानंत) समधारा के कुल स्थान केवलज्ञान से आधे हैं। अर्थात् $\frac{\text{केवलज्ञान}}{2}$ अथवा $\frac{65536}{2}$ = 32768 समधारा के स्थान हैं।

नोट – अंक संदृष्टि में सर्वत्र उत्कृष्ट अनंतानंत स्वरूप केवलज्ञान का मान 65536 है।

3. विषमधारा – एक के अंक से प्रारम्भ कर 2–2 की वृद्धि को प्राप्त होते हुए केवलज्ञान से एक अंक हीन पर्यन्त विषमधारा होती है।

जैसे – 1,3,5,7 .... 65533, 65535 [केवलज्ञान से 1 अंक हीन]

प्रथम स्थान = 1 और **अन्तिम स्थान =** 65536–1 = 65535

शंका–इस धारा में अन्तिम स्थान केवलज्ञान से एक अंक हीन क्यों है?

समाधान–क्योंकि केवलज्ञान की संख्या समधारा के अन्तर्गत आती है, यदि एक अंक बढ़ाते हैं तो उत्कृष्ट का उल्लंघन होता है जो संभव नहीं है इसलिए एक अंक हीन कहें है।

शंका– विषमधारा के कुल स्थान कितने हैं?

समाधान–सर्वधारा के स्थानों में से समधारा के स्थान घटाने पर विषम धारा के स्थान प्राप्त होते हैं। अथवा विषमधारा के कुल स्थान $\frac{\text{केवलज्ञान}}{2}$ अर्थात् केवलज्ञान के आधे हैं। अर्थात् $\frac{65536}{2}$ = 32768

4. कृतिधारा – कृति नाम वर्ग का है। अत: जो संख्या वर्ग से उत्पन्न हो, अर्थात् किन्हीं भी संख्याओं का परस्पर में गुणा करने से जो संख्याऐं उत्पन्न हो उन्हें कृतिधारा कहते हैं।

जैसे – $(1)^2 = 1, (2)^2 = 4, (3)^2 = 9$ .... $(254)^2 = 64516, (255)^2 = 65025, (256)^2 = 65536$

प्रथम स्थान = 1 और **अंतिम स्थान** = 65536 [केवलज्ञान स्वरूप उत्कृष्ट अनंतानंत]

(5) अकृतिधारा – जो संख्याएँ स्वयं किसी के वर्ग से उत्पन्न नहीं होती वे संख्याएँ अकृतिधारा की हैं। कृतिधारा की संख्याओं के अतिरिक्त दो से प्रारम्भ कर एक कम केवलज्ञान पर्यन्त की सभी संख्याएँ इस धारा में है।

जैसे- 2,3,5,6,7, 8........ 65535।

*सर्वधारा के स्थान – कृतिधारा के स्थान = अकृतिधारा के स्थान।

प्रथम स्थान – 2, अन्तिम स्थान – 65535

(6) घनधारा – किसी भी संख्या को तीन बार परस्पर गुणा करने से जो संख्या प्राप्त होती है, वह घनधारा की संख्या कहलाती है।

जैसे – $1 \times 1 \times 1 = 1, 2 \times 2 \times 2 = 8, 3 \times 3 \times 3 = 27$........ 40x40x40 = 64000

प्रथम स्थान – 1, अन्तिम स्थान – 64000 (केवलज्ञान का आसन घनमूल)^3 (इसे आसन्न घन कहते हैं, जो केवलज्ञान के आधे 32768 के घनमूल 32 में 8 स्थानों को जोड़ने पर 40 प्राप्त हुआ। इस 40 का घन है, इससे ज्यादा 41 का घन केवलज्ञान से ज्यादा प्राप्त होता है, जो मान्य नहीं है।)

(7) अघनधारा – सर्वधारा में से घनधारा के स्थानों को कम कर देने पर केवलज्ञान पर्यन्त समस्त स्थान अघनधारा स्वरूप है।

जैसे – 2,3,4,5,6,7,9, ... 65535, 65536।

प्रथम स्थान – 2, अंतिम स्थान – 65536

(8) वर्गमातृक धारा – जो संख्या अपने वर्ग के द्वारा अन्य संख्या उत्पन्न कराने में माता के समान होती हैं उन्हें वर्ग मातृक धारा कहते हैं। जैसे 1,2,3,4,5,6...... 254, 255, 256 आदि।

प्रथम स्थान – 1, अन्तिम स्थान 256 ये सभी संख्याएँ नवीन नवीन संख्याओं को उत्पन्न कराती है।

शंका–वर्गमातृक धारा का अन्तिम स्थान 256 से आगे क्यों नहीं लिया ?

समाधान–256 का वर्ग 65536 केवलज्ञान स्वरुप प्राप्त हो जाता है और एक अंक भी आगे बढ़ाते है तो वह केवलज्ञान का उल्लंघन करता है। जैसे–257 का वर्ग $(257)^2$= 66049 प्राप्त होता है जो कि केवलज्ञान का उल्लंघन करता है।

(9) अवर्गमातृकधारा – जिन संख्याओं का वर्ग करने पर वर्ग संख्या का प्रमाण केवलज्ञान से आगे निकल जाता है, वे सब संख्याएँ अवर्गमातृक हैं।

जैसे – 257,258 65536

प्रथम स्थान – 257 अर्थात् एक अधिक केवलज्ञान का प्रथम वर्गमूल।

अंतिम स्थान – 65536 ।

(10) घनमातृकधारा – जो संख्याएँ माता के समान घन उत्पन्न करने में समर्थ हैं, उन्हें घनमातृकधारा कहते हैं।

जैसे - 1,2,3,4 40

प्रथम स्थान – 1, अन्तिम स्थान–40 (क्योंकि यह केवलज्ञान का आसन्नघनमूल स्वरूप है और 1 अंक भी अधिक लेने पर उसका घन केवलज्ञान से अधिक हो जाता है।) जैसे–41 का घन = 68291 प्राप्त होता है जो कि केवलज्ञान का उल्लंघन करता है।

(11) अघनमातृकधारा – जिन संख्याओं का घन करने पर घन रूप संख्या का प्रमाण केवलज्ञान से आगे निकल जाता है, वे सब संख्याएँ अघनमातृक धारा हैं।

जैसे - 41,42,43 65536

प्रथम स्थान – 41 (अर्थात् एक अधिक केवलज्ञान के आसन्नघनमूल), अंतिम स्थान – 65536।

(12) द्विरूपवर्गधारा – जिस धारा में दो के वर्ग से प्रारम्भ कर पूर्व–पूर्व के स्थानों का वर्ग करते हुए उत्तर–उत्तर स्थान प्राप्त होते हैं, उसे द्विरूपवर्गधारा कहते हैं।

जैसे – 2 का वर्ग 4, 4 का वर्ग = 16, 16 का वर्ग 256, 256 का वर्ग पणट्ठी, पणट्ठी का वर्ग बादाल, बादाल का वर्ग एकट्ठी..... केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण।

प्रथम स्थान – 4, अन्तिम स्थान – केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण।

नोट–द्विरूप वर्ग धारा के छटवें स्थान स्वरूप 2x2 4x4 16x16 256x256 पणट्ठी x पणट्ठी बादाल x बादल–1अर्थात् एकट्ठी–1 प्रमाणस्वरूप (18446744073709591616) श्रुत ज्ञान के अक्षरों का प्रमाण होता है अर्थात् एक कम अट्ठी 18446744073709591616–1=18446744073709591 6915 अक्षर सम्पूर्ण श्रुतज्ञान में होते हैं जो कि द्विरूप वर्ग धारा में प्राप्त नहीं होते हैं।

(13) द्विरूपघनधारा – द्विरूपवर्गधारा में जो–जो वर्ग राशि है, उन वर्ग रूप राशियों की जो घनरूप राशि है, वह द्विरूपघनधारा कहलाती है।

जैसे–2 का घन =8, 4 का घन = 64..............केवलज्ञान के द्वितीय वर्गमूल का घन।

प्रथम स्थान – 8, अन्तिम स्थान – केवलज्ञान के द्वितीय वर्गमूल का घन।

(14) द्विरूपघनाघनधारा – घनराशि का पुन: घन करने का नाम घनाघन है। द्विरूप वर्गधारा में जो–जो राशि वर्ग रूप है उस प्रत्येक राशि का घनाघन इस धारा में प्राप्त होता है।

जैसे - $[(2)^3]^3 = (8)^3 = 512$, ... केवलज्ञान के चतुर्थ व प्रथम वर्गमूल का गुणनफल।

प्रथम स्थान – 512, अन्तिम स्थान – केवलज्ञान का चतुर्थ व प्रथम वर्गमूल का गुणनफल।

शंका–केवलज्ञान के प्रथम, द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ वर्गमूल कौन–कौन से हैं ?

समाधान– प्रथम वर्गमूल = 256 दूसरा वर्गमूल = 16
तृतीय वर्गमूल = 4 चतुर्थ वर्गमूल = 2 है।

शंका–द्विरूप घन धारा का अन्तिम स्थान निकालकर बताइए?

समाधान–इस धारा का अंतिम स्थान केवलज्ञान के द्वितीय वर्गमूल का घन बताया है। केवलज्ञान का द्वितीय वर्गमूल =16 है इसका घन $(16)^3 = 4096$ प्राप्त होता है। इससे आगे 256 का घन केवलज्ञान का उल्लंघन करता है इसलिए 4096 को ही अन्तिम स्थान स्वीकार किया है।

शंका–द्विरूप घनाघन धारा का अंतिम स्थान निकालकर बताइए। (अंक संदृष्टि से)

समाधान–इस धारा का अंतिम स्थान केवलज्ञान का चतुर्थ व प्रथम वर्गमूल का गुणनफल कहा है। केवलज्ञान का चतुर्थ वर्गमूल=2 तथा प्रथम वर्गमूल =256 है। इनका गुणनफल (256X2) = 512 प्राप्त होता है। अत: इस धारा का प्रथम व अन्तिम स्थान 512 ही है, इससे आगे केवलज्ञान का उल्लंघन होता है।

जैसे– द्विरूपवर्ग धारा में 2 के बाद 4 आता है इसका घनाघन करने पर $(4^3)^3 = (64)^3 = 262144$ प्राप्त होता है जो केवलज्ञान का उल्लंघन करता है।

धाराओं की विशेषताएँ -

समधारा की विशेषता – समधारा में संख्यात, असंख्यात और अनन्त के जघन्य स्थान तो प्राप्त हो जाते हैं, किन्तु संख्यात, असंख्यात के उत्कृष्ट स्थान प्राप्त नहीं होते हैं। जैसे - मान लीजिए - जघन्य संख्यात दो और जघन्य असंख्यात -16 है तथा जघन्य अनंत 256 है तो उत्कृष्ट संख्यात = 15, उत्कृष्ट असंख्यात 255 तथा उत्कृष्ट अनन्त 65536 है। यहाँ संख्यात, असंख्यात व अनन्त के जघन्य स्थान तो सम है इसलिए समधारा में प्राप्त हो जाते हैं, किन्तु संख्यात, असंख्यात के उत्कृष्ट स्थान विषम होने से इस धारा में प्राप्त नहीं होते। किंतु अनंत का उत्कृष्ट स्थान सम होने से इस धारा में प्राप्त हो जाता है।

शंका–समधारा में केवलज्ञान के आधे ही स्थान क्यों हैं?

समाधान–सर्व संख्या में से आधे स्थान सम व आधे स्थान विषम होते हैं। जैसे - माना कि सर्वधारा की संख्या 100 है, इसमें से 50 स्थान सम व 50 स्थान विषम है।

विषमधारा की विशेषता – अंकसंदृष्टि की अपेक्षा से असंख्यात का जघन्य स्थान 16 और अनंत का जघन्य स्थान 256 है। इन दोनों में एक-एक अंक जोड़ने से विषमधारा में असंख्यात का जघन्य स्थान 16 + 1 = 17 तथा अनन्त का जघन्य स्थान 256 + 1 = 257 बन जाता है। लेकिन इस धारा में प्राप्त नहीं होता है। अर्थात् सर्वधारा में संख्यात, असंख्यात के जो 15 और 255 के उत्कृष्ट स्थान थे, वही यहाँ विषमधारा में है अर्थात् इस विषमधारा में उत्कृष्ट असंख्यात और उत्कृष्ट संख्यात तो प्राप्त है; किन्तु जघन्य स्थान प्राप्त नहीं होते हैं।

* विषमधारा के कुल स्थान केवलज्ञान के आधे अर्थात् $= \frac{\text{केवलज्ञान}}{2}$ हैं।

समधारा व विषमधारा के स्थानों का प्रमाण प्राप्त करने की विधि – दोनों धाराओं के स्थान केवलज्ञान के अर्ध प्रमाण [केवलज्ञान के आधे] होते हैं।

''आदि अन्ते सुद्धे, वड्ढिहिदे इमिजुगे ठाणा'' इस करण सूत्रानुसार आदि और अन्त स्थान को शुद्ध करने अर्थात् आदि और अन्त के प्रमाण में जो अधिक हो उसमें से हीन प्रमाण घटाना चाहिए। प्रत्येक स्थान

पर दो की वृद्धि हुई है, अत: 2 का भाग देकर जो लब्ध आवे उसमें एक जोड़ देने से स्थानों की प्राप्ति हो जाती है।

सम/विषम धारा के स्थान का सूत्र = $\frac{\text{अन्त}-\text{आदि}}{\text{वृद्धि (चय)}}+1$

समधारा के स्थान = $\frac{\text{केवलज्ञान}-2}{2}+1$

यहाँ – समधारा का अन्तिम स्थान = 65536, आदि स्थान = 2 है।
प्रत्येक स्थान पर वृद्धिचय 2 है।

अत: $=\frac{65536-2}{2}+1$

$=\frac{65534}{2}+1$

= 32767 + 1 = 32768 [ये केवलज्ञान के अर्धप्रमाण समधारा के स्थान हैं]

विषमधारा के स्थान = $\frac{\text{केवलज्ञान}-1}{2}+1$

यहाँ विषमधारा का अन्तिम स्थान = 65536, आदिस्थान = 1 हैं।
प्रत्येक स्थान पर वृद्धिचय = 2 है।

अत: $=\frac{65536-1}{2}+1$

$=\frac{65535}{2}+1$

$=\frac{65536}{2}+1 = 32768$ [ये केवलज्ञान के अर्धप्रमाण विषमधारा के स्थान हैं]

कृतिधारा की विशेषताएँ – एक से प्रारम्भ कर एक-एक की वृद्धि करते हुए केवलज्ञान के प्रथम वर्गमूल है। तो (256) इसके वर्गमूल प्रमाण तक के स्थान इस धारा के स्थान हैं।

❊ कृतिधारा के स्थान को तत्पद कहते हैं।

❊ कृतिधारा के कुलस्थान = केवलज्ञान के प्रथम वर्गमूल की संख्या प्रमाण हैं अर्थात् केवलज्ञान 65536 है तो इसका प्रथम वर्गमूल 256 होता है। अंक सदृष्टि से 256 ही इस धारा के स्थान है।

❊ इस धारा में जघन्य संख्यात, जघन्य परीतासंख्यात, जघन्य युक्तासंख्यात, जघन्य असंख्यतासंख्यात, जघन्य परीतानंत, जघन्य युक्तानन्त, उत्कृष्ट अनंतानंत है किन्तु उत्कृष्ट संख्यात,

उत्कृष्ट परीतासंख्यात, उत्कृष्ट युक्तासंख्यात, उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात, उत्कृष्ट परीतानंत, उत्कृष्ट युक्तानंत के स्थान प्राप्त नहीं होते हैं।

शंका–उत्कृष्ट संख्यात, उत्कृष्ट परीतासंख्यात आदि संख्याएँ इस धारा में प्राप्त क्यों नहीं होती हैं?

समाधान–क्योंकि, इस धारा में वे ही संख्याएँ प्राप्त होती हैं जो वर्ग से उत्पन्न होती हैं। उक्त सभी संख्याएँ वर्ग से उत्पन्न नहीं होती केवल 'व्यकलन विधि' से ही उत्पन्न होती है। जैसे – उत्कृष्ट संख्यात = जघन्य परीतासंख्यात – 1 है।

अंक संदृष्टि में सर्वधारा में उत्कृष्ट संख्यात 15 है और जघन्य परीतासंख्यात 16 है। अत: जघन्य परितासंख्यात – 1 अत: 16 – 1 = 15 [उत्कृष्ट संख्यात]

शेष सभी संख्याओं में इसी प्रकार लगा लेना चाहिए –

उत्कृष्ट परीतासंख्यात = जघन्य युक्तासंख्यात – 1

उत्कृष्ट युक्तासंख्यात = जघन्य असंख्यातासंख्यात – 1

उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात = जघन्य परितानंत – 1

उत्कृष्ट परीतानन्त = जघन्य युक्तानन्त – 1

उत्कृष्ट युक्तानन्त = जघन्य अनन्तानन्त – 1

ये संख्याऐं व्यकलन विधि से प्राप्त है, अत: इस धारा में नहीं आती है।

अकृतिधारा की विशेषताएँ – इस धारा में उत्कृष्ट संख्यात, उत्कृष्ट परीतासंख्यात, उत्कृष्ट युक्तासंख्यात, उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात, उत्कृष्ट परीतानन्त, उत्कृष्ट युक्तानंत आते हैं किन्तु उत्कृष्ट अनंतानंत और संख्यात, असंख्यात तथा अनंत के सभी जघन्य नहीं आते।

शंका–उत्कृष्ट अनंतानंत और सभी जघन्य संख्या इस धारा में प्राप्त क्यों नहीं होती?

समाधान–क्योंकि ये सभी संख्याएँ वर्ग से उत्पन्न होती हैं और इस धारा में वर्ग से उत्पन्न होने वाली संख्याएँ नहीं आती है।

जैसे – जघन्य संख्यात = 2 [यह किसी के वर्ग से उत्पन्न नहीं हुई]

द्विरूप वर्ग धारा में संख्यात बार वर्ग करते–करते जघन्य परीतासंख्यात की प्राप्ति होती है इससे यह सिद्ध होता है कि जघन्य परीतासंख्यात वर्ग से उत्पन्न होती है।

माना जघन्य परीतासंख्यात = 16 है।

द्विरूप वर्ग धारा का प्रथम स्थान = 2 है।

$2^2 = 4, 4^2 = 16$

अत: यह संख्या अकृति धारा में उत्पन्न नहीं होती है।

इसी प्रकार जघन्य परितासंख्यात, जघन्य युक्तासंख्यात, जघन्य असंख्यातासंख्यात, जघन्य परीतानन्त, जघन्य युक्तानंत, जघन्य अनंतानंत को भी जान लेना चाहिए।

घन व अघन धारा की विशेषताएँ – *64000 को केवलज्ञान का आसन्न घन कहते हैं, इसके घनमूल 40 को केवलज्ञान का आसन्न घनमूल कहते हैं।

*घनधारा के समस्त स्थान केवलज्ञान के आसन्न घनमूल प्रमाण ही होते हैं।

जो राशियाँ घन से उत्पन्न नहीं होती वे राशियाँ अघन धारा में आती हैं।

*द्विरूप वर्गधारा में जिस वर्ग स्थान की वर्ग शलाका राशि सम होती है, उस वर्ग स्थान का अर्ध भाग नियम से घन रूप ही होता है।

जैसे – द्विरूपवर्ग धारा का द्वितीय स्थान 16 और चतुर्थ स्थान 65536 है, जिसकी वर्ग शलाकाएँ क्रमश: 2 और 4 हैं जो समरूप ही हैं, अत: 16 का अर्ध भाग 8 है, जो 2 के घन स्वरूप है। [2 × 2 × 2 = 8] और 65536 का अर्ध भाग 32768 है, जो 32 के घन स्वरूप है। अर्थात् [32×32× 32 = 32768]

* द्विरूप वर्गधारा में जिस वर्ग स्थान की वर्ग शलाकाएँ विषम होती हैं, उस राशि का (चौथाई) भाग घनरूप होता है।

जैसे – द्विरूप वर्गधारा के प्रथम स्थान 4 व तृतीय स्थान 256 की वर्ग शलाकाएँ क्रमश: 1 और 3 है जो विषम है। द्विरूप वर्गधारा का प्रथम स्थान 4 है, इसका चौथाई = 1 प्राप्त हुआ जो एक के घन स्वरूप है। तृतीय स्थान 256 है, इसका चौथाई $=\frac{256}{4}$ =64 प्राप्त हुआ जो 4 के घन स्वरूप है अर्थात् [4 × 4 × 4 = 64]।

Note – उपर्युक्त न्यायानुसार केवलज्ञान की वर्ग शलाका सम होने से केवलज्ञान का अर्धभाग घनरूप ही होता है, यह सिद्ध है।

* इस घनधारा के कुल स्थान केवलज्ञान के आसन्न मूल की संख्या प्रमाण हैं।

वर्गमातृक धारा की विशेषताएँ – एक से प्रारम्भ कर केवलज्ञान के प्रथम वर्गमूल पर्यन्त जितने स्थान हैं, उतने ही स्थान इस धारा के हैं।

* 21 प्रकार की संख्या प्रमाण में से इस धारा में मध्यम अनंतानंत का अन्तिम बहुभाग और उत्कृष्ट अनंतानंत नहीं पाया जाता है। शेष सभी संख्याएँ पाई जाती हैं।

अवर्गमातृक धारा की विशेषताएँ – इस अवर्गमातृक धारा के समस्त स्थान केवलज्ञान के प्रथम वर्गमूल से रहित केवलज्ञान प्रमाण हैं।

* इस धारा में केवलज्ञान के अर्धच्छेद, वर्ग शलाका और वर्गमूल आदि नहीं पाये जाते हैं। क्योंकि ये क्रमश: 16, 4 और 256 है जो इस धारा के प्रथम स्थान से हीन है।

घनमातृक धारा की विशेषताएँ – एक से लेकर केवलज्ञान के आसन्न घनमूल पर्यन्त इस धारा के स्थान होते हैं।

* इस धारा में केवलज्ञान का द्वितीय वर्गमूल तो पाया जाता है क्योंकि उसका घन केवलज्ञान के प्रथम वर्गमूल से गुणित द्वितीय वर्गमूल होता है, जो केवलज्ञान से कम है। किन्तु केवलज्ञान का प्रथम वर्गमूल नहीं पाया जाता, क्योंकि इसका घन केवलज्ञान से अधिक हो जाता है।

अघनमातृक धारा की विशेषताएँ – इस धारा के स्थान आसन्न घनमूल रहित केवलज्ञान प्रमाण हैं।

अघनमातृक धारा के स्थान = केवलज्ञान – केवलज्ञान के आसन्न घनमूल

= 65536–40 = 65496

✻ इस धारा में जघन्य संख्यात से लेकर जघन्य अनंतानंत तक का कोई भी स्थान नहीं है। उत्कृष्ट अनंतानंत है, किन्तु मध्यम अनंतानंत भजनीय है।

द्विरूप वर्ग धारा की विशेषताएँ – पूर्व-पूर्व का वर्ग करते हुए संख्यात स्थान-संख्यात स्थान आगे जाकर जघन्य परीतासंख्यात की वर्गशलाका राशि, उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल प्राप्त होता है फिर उसका एक बार वर्ग करने पर जघन्य परीतासंख्यात की राशि इससे संख्यात स्थान आगे जाकर जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण आवली व आवली का वर्ग करने पर प्रतरावली की प्राप्ति होती है।

Note – जो राशि विरलन और देय के विधान से उत्पन्न होती है, उस राशि की वर्गशलाकाएँ और अर्धच्छेद इस धारा में नहीं मिलते। अर्थात् इस धारा में आवली की उत्पत्ति तो होती है किन्तु आवली की वर्गशलाकाएँ और उसके अर्धच्छेद राशियों की उत्पत्ति नहीं होती।

शंका–आवली की वर्ग शलाकाएँ व अर्धच्छेद इस द्विरूप वर्गधारा में क्यों प्राप्त नहीं होते हैं?

समाधान–माना आवली का प्रमाण = 256 है तो इसके अर्धच्छेद = 8 और वर्ग शलाकाएँ = 3 होती हैं। जो कि इस धारा में प्राप्त नहीं हैं। अत: इस धारा में आवली की वर्ग शलाकाएँ व अर्धच्छेद प्राप्त नहीं होते।

अब प्रतरावली से असंख्यात स्थान–असंख्यात स्थान आगे जाकर अद्धापल्य की वर्ग शलाकाएँ, फिर उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल, फिर अद्धापल्य प्राप्त होता है। इससे असंख्यात स्थान आगे जाकर सूच्यंगुल तथा इसका वर्ग करने पर प्रतरांगुल व इससे असंख्यात स्थान आगे जाकर जगत्श्रेणी का प्रथम घनमूल प्राप्त होता है। परन्तु सूच्यंगुल व प्रतरांगुल की वर्ग शलाकाएँ व अर्धच्छेद उत्पन्न नहीं होते क्योंकि ये विरलन, देय से उत्पन्न हुई राशियाँ है।

Note – जगच्छ्रेणी द्विरूप घनधारा में प्राप्त होती है, द्विरूप वर्गधारा में नहीं।

अब जगच्छ्रेणी के घनमूल से असंख्यात–असंख्यात स्थान आगे जाकर जघन्य परितानंत की वर्ग शलाकाएँ, उसी के अर्धच्छेद फिर उसी का प्रथम वर्गमूल प्राप्त होता है फिर इसका वर्ग करने पर जघन्य परितानंत प्राप्त होता है। इससे असंख्यात स्थान आगे जाकर जघन्य युक्तानंत तथा इसका वर्ग करने पर जघन्य अनंतानंत की उत्पत्ति होती है। इससे अनंत स्थान–अनंत स्थान आगे जाकर जीव राशि की वर्ग शलाकाएँ, उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल तथा इसका वर्ग करने पर जीवराशि का प्रमाण प्राप्त होता है। इससे अनन्त–अनन्त स्थान आगे जाकर पुद्गल राशि की वर्गशलाकाएँ, उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल तथा इसका वर्ग करने पर पुद्गल राशि का प्रमाण प्राप्त होता है। इससे अनन्त स्थान–अनंत स्थान आगे जाकर काल के समयों की वर्ग शलाकाएँ, उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल तथा इसका वर्ग करने पर काल के जितने समय हैं, उनका प्रमाण प्राप्त होता है। काल के समय प्रमाण से अनन्त–अनन्त स्थान आगे जाकर श्रेणी रूप आकाश की वर्गशलाकाएँ, उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल तथा इसका वर्ग करने पर आकाश श्रेणी तथा इसका वर्ग करने पर प्रतराकाश उत्पन्न होता है।

प्रतराकाश से उत्तरोत्तर अनन्त स्थान आगे-आगे जाकर क्रमश: धर्म-अधर्म द्रव्य के अगुरुलघुगुण के अविभागी प्रतिच्छेद, एक जीव के अगुरुलघुगुण के अविभागी प्रतिच्छेद, सूक्ष्म निगोदलब्ध्यपर्याप्तक जीव के पर्याय नामक जघन्य लब्ध्यक्षर श्रुतज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेद, तिर्यंच गति में असंयत सम्यग्दृष्टि जीव के जघन्य क्षायिक सम्यक्त्व लब्धि के अविभागी प्रतिच्छेद, केवलज्ञान की वर्ग शलाकाओं का प्रमाण, उसी के अर्धच्छेद, उसी का अष्टम वर्गमूल तथा इसका वर्ग करने पर केवलज्ञान का सप्तम वर्गमूल, इस प्रकार वर्ग करते-करते षष्ठम, पंचम, चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय, प्रथम वर्गमूल तथा इसका भी वर्ग करने पर केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण होता है। यही द्विरूपवर्गधारा का अन्तिम स्थान है।

❊ केवलज्ञान की वर्ग शलाकाओं का जितना प्रमाण है, उतना ही प्रमाण द्विरूपवर्गधारा के समस्त स्थानों का है।

❊ इस द्विरूपवर्गधारा के मध्यम स्थानों में निम्नलिखित 20 राशियाँ प्राप्त होती हैं -

(1) जघन्य परीतासंख्यात, (2) जघन्य युक्तासंख्यातप्रमाण रूप आवली, (3) जघन्य असंख्यातासंख्यात रूप प्रतरावली, (4) अद्धापल्य, (5) सूच्यंगुल, (6) प्रतरांगुल, (7) जगत्श्रेणी का घनमूल, (8) जघन्य परीतानंत, (9) जघन्य युक्तानंत (अभव्य राशि), (10) जघन्य अनंतानंत, (11) सम्पूर्ण जीव राशि, (12) सम्पूर्ण पुद्गल राशि, (13) सम्पूर्ण काल के समय, (14) श्रेणी आकाश, (15) प्रतराकाश, (16) धर्म-अधर्म द्रव्य के अगुरुलघुगुण के अविभागी प्रतिच्छेद, (17) एक जीव के अगुरुलघुगुण के अविभागी प्रतिच्छेद, (18) सूक्ष्म निगोदिया जीव के लब्ध्यक्षर पर्याय श्रुतज्ञान के अविभागी-प्रतिच्छेद, (19) असंयत तिर्यंच के जघन्य क्षायिक सम्यक्त्व रूप जघन्य लब्धि के अविभागी प्रतिच्छेद, (20) केवलज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेद।

शंका-अविभागी प्रतिच्छेद किसे कहते हैं?

समाधान-जिस शक्त्यंश का दूसरा भाग न किया जा सके, उसे अविभागी प्रतिच्छेद कहते हैं।

(13) द्विरूपघनधारा - द्विरूपवर्गधारा में जिस सम संख्या की जो-जो वर्ग रूप राशि है उस-उस संख्या की जो घन रूप राशि है, उसकी धारा को द्विरूप घनधारा कहते हैं।

जैसे - द्विरूप वर्गधारा का प्रथम स्थान 4 है जो दो का वर्ग है इसी 2 का घन $(2 \times 2 \times 2) = 8$, अत: द्विरूप घनधारा का प्रथम स्थान 8 है।

❊ इसी प्रकार द्विरूप वर्गधारा का दूसरा स्थान 16 है जो 4 का वर्ग है, इसी 4 का घन $(4 \times 4 \times 4) = 64$ है, अत: इस धारा का दूसरा स्थान 64 है जो इसी धारा के प्रथम स्थान 8 के वर्ग स्वरूप (8×8) है।

❊ इसी प्रकार द्विरूप वर्गधारा का तीसरा स्थान 256 है जो 16 का वर्ग है, इसी 16 का घन $(16 \times 16 \times 16) = 4096$ है, अत: इस धारा का तीसरा स्थान 4096 है जो इसी धारा के दूसरे स्थान 64 के वर्ग (64×64) स्वरूप है।

इसी प्रकार पूर्व-पूर्व की राशि का वर्ग करते हुए उत्तर-उत्तर स्थान प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार संख्यात स्थान आगे जाकर जघन्य परीतासंख्यात का घन प्राप्त होता है। इससे संख्यात स्थान आगे जाकर आवली

का घन उत्पन्न होता है। आवली के घन का एक बार वर्ग करने पर प्रतरावली का घन प्राप्त होता है अब इससे असंख्यात-असंख्यात स्थान आगे जाकर पल्य की वर्ग शलाकाओं का घन, उसी के अर्धच्छेदों का घन, उसी पल्य के प्रथम वर्गमूल का घन प्राप्त होता है। अब इसका वर्ग करने पर पल्य का घन प्राप्त होता है। इससे असंख्यात-असंख्यात स्थान आगे जाकर घनांगुल, जगत्श्रेणी की प्राप्ति होती है। और इसका वर्ग करने पर जगत्प्रतर उत्पन्न होता है।

जगत्प्रतर से अनन्त-अनन्त स्थान आगे जाकर जीवराशि की वर्ग शलाकाओं का घन, उसी के अर्धच्छेदों का घन, उसी के प्रथम वर्गमूल का घन प्राप्त होता है। इसका एक बार वर्ग करने पर जीवराशि के घन, इससे अनन्त स्थान आगे जाकर सर्वाकाश का प्रथम वर्गमूल, इसका एक बार वर्ग करने पर सर्वाकाश की उत्पत्ति होती है। सर्वाकाश राशि के आगे निरन्तर अनन्त स्थान आगे जाकर केवलज्ञान के द्वितीय वर्गमूल का घन उत्पन्न होता है। यही इस धारा का अन्तिम स्थान है। यह केवलज्ञान के द्वितीय वर्गमूल और प्रथम वर्गमूल का परस्पर गुणा करने से उत्पन्न राशि के सदृश है।

जैसे – केवलज्ञान स्वरूप 65536 के द्वितीय वर्गमूल 16 का घन 4096 है। और 65536 के प्रथम वर्गमूल 256 में द्वितीय वर्गमूल 16 का गुणा [256 × 16] करने पर भी 4096 की प्राप्ति होती है।

सूत्र – केवलज्ञान के द्वितीय वर्गमूल का घन = केवलज्ञान का प्रथम वर्गमूल x द्वितीय वर्गमूल

शंका–केवलज्ञान का द्वितीय वर्गमूल का घन ही इस धारा का अन्तिम स्थान कैसे है ?

समाधान–द्विरूप वर्गधारा की चरम राशि केवलज्ञान है और द्विचरमराशि केवलज्ञान का प्रथम वर्गमूल है। इन दोनों राशियों के घन को यहाँ ग्रहण नहीं किया है, क्योंकि इनके घन को ग्रहण करने से केवलज्ञान से अधिक प्रमाण वाली राशि की प्राप्ति होने का प्रसंग प्राप्त होता है। अत: इस धारा के अन्तिम स्थान केवलज्ञान के द्वितीय वर्गमूल का घन ही ग्रहण किया गया है।

* इस धारा के समस्त स्थान दो कम केवलज्ञान की वर्गशालाका प्रमाण है।

* इस धारा का प्रथम स्थान = 8, अन्त स्थान – केवलज्ञान के वर्गमूल का घन है।

और द्विरूपवर्गधारा के सभी मध्यम स्थान घन स्वरूप होकर इस धारा के मध्यम स्थान बन जाते हैं।

(14) द्विरूपघनाघन धारा – द्विरूप वर्गधारा में जिन-जिन संख्याओं की वर्गरूप राशियाँ हैं, उन-उन संख्याओं का घनाघन ही इस धारा में प्राप्त होता है। घन के घन को घनाघन कहते हैं। जैसे – द्विरूपवर्ग धारा का प्रथम स्थान $(2)^2$ है। इस दो का घनाघन 2 × 2 × 2 × 2 × 2 × 2 × 2 × 2 × 2 = 512 है, जो इस धारा का प्रथम स्थान है। इसी 512 का वर्ग [512 × 512] = 262144 इस धारा का दूसरा स्थान है, जो द्विरूप वर्गधारा का दूसरा स्थान 4 के घनाघन [4 × 4 × 4 × 4 × 4 × 4 × 4 × 4 × 4] = 262144 स्वरूप है।

इससे असंख्यात स्थान आगे जाकर लोकाकाश के प्रदेशों के प्रमाण स्वरूप लोक उत्पन्न होता है। इस लोक की वर्गशलाकादि इस धारा में नहीं आती। लोक के प्रमाण से असंख्यात-असंख्यात स्थान आगे जाकर गुणकार शलाका राशि उत्पन्न होती है। इससे असंख्यात-असंख्यात स्थान आगे जाकर तेजस्काय जीव राशि की वर्ग शलाकाएँ, उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल तथा इसका वर्ग करने पर तेजस्कायिक जीव राशि की संख्या उपलब्ध होती है।

शंका–तेजस्कायिक जीव राशि कैसे उत्पन्न होती है ?

समाधान–लोक प्रमाण राशि तथा लोक प्रमाण ही शलाका राशि है तब लोक प्रमाण राशि का विरलन कर उसी को देय देकर परस्पर गुणा करना चाहिए, तब शलाका राशि में से एक अंक घटा देना चाहिए। यहाँ पर गुणकार शलाकाएँ एक कम लोक प्रमाण मात्र होती है। अत: पुन: प्राप्त राशि का विरलन कर उसी को देकर परस्पर गुणा करना चाहिए, तब फिर शलाका राशि में से एक अंक घटा देना चाहिए। इस प्रकार पुन: पुन: विरलन, देय, गुणन और ऋण की क्रिया करते हुए लोक प्रमाण शलाका राशि समाप्त करने को एक बार शलाका निष्ठापन कहते हैं।

इस प्रकार जो महाराशि उत्पन्न हुई है उस महाराशि की शलाका रूप में स्थापन करें, उसका विरलन देय देकर गुणा करें व शलाका में एक शलाका कम करें उसके पश्चात् जो राशि उत्पन्न हो उसका विरलन देय देकर गुणा करें और शलाका में से एक शलाका कम करें इस प्रकार सम्पूर्ण शलाका इसी विधि से समाप्त करें।

इसी विधि से तीन बार शलाका त्रय निष्ठापन करके पुन: चतुर्थ बार प्राप्त हुई। महाराशि को विरलन और देय देकर परस्पर गुणा करने पर प्राप्त हुई महाराशि में से अन्योन्याभ्यस्त राशि को घटाने पर प्राप्त हुई महाराशि को शलाका रूप में स्थापित करना चाहिए तथा जो पूर्व में (चतुर्थ बार) प्राप्त राशि का विरलन, देय, गुणन के द्वारा शलाका निष्ठापन करने पर जितनी गुणकार राशि उत्पन्न होगी वही राशि तेजस्कायिक जीव राशि है।

शंका–गुणकार शलाकाएँ किसे कहते हैं ?

समाधान–तेजस्कायिक जीव राशि का प्रमाण प्राप्त करने के विधान में लोक का जितनी बार परस्पर गुणा किया गया है, उतनी गुणाकार शलाकाएँ होती हैं।

शंका–अन्योन्याभ्यस्त राशि किसे कहते हैं ?

समाधान–जितनी बार शलाका निष्ठापन होती है उतने अंक प्रमाण राशि को अन्योन्याभ्यस्त राशि कहते हैं। जैसे – प्रथम शलाका त्रय निष्ठापन में लोक प्रमाण अन्योन्याभ्यस्त राशि है, द्वितीय शलाका त्रय निष्ठापन में असंख्यात लोक प्रमाण अन्योन्याभ्यस्त राशि हो जाती है, तृतीय में भी असंख्यात लोक प्रमाण राशि हो जाती है। अथवा शलाका प्रमाण अन्योन्याभ्यस्त राशि होती है।

संवर्गित – 1 को भी गुणकार शलाका कहते हैं।

जैसे – $(\text{लोक})^{\text{लोक}} - 1$ [यह 1 अन्योन्याभ्यस्त राशि हुई]

$= [\text{असंख्यात लोक}]^{\text{असंख्यात लोक}}$

इससे असंख्यात–असंख्यात स्थान आगे जाकर तेजस्कायिक जीव की कायस्थिति की वर्गशलाकाएँ, उसी की अर्धच्छेद शलाकाएँ, उसी का प्रथम वर्गमूल तथा इसका एक बार वर्ग करने पर तेजस्कायिक जीव की कायस्थिति का प्रमाण प्राप्त होता है।

शंका–तेजस्कायिक जीव की कायस्थिति किसे कहते हैं ?

समाधान–पृथ्वी, जल आदि अन्य काय से आकर तेजस्कायिक में उत्पन्न हुए किसी एक जीव का

उत्कृष्ट रूप से तेजस्कायिक पर्याय को छोड़े बिना उसी में अवस्थित रहने का जितना काल है अर्थात् उस काल के जितने समय है वह तेजस्कायिक जीव की काय स्थिति है।

इससे असंख्यात-असंख्यात स्थान आगे जाकर सर्वावधि ज्ञान के उत्कृष्ट क्षेत्र की वर्ग शलाकाएँ, उसी क्षेत्र की अर्धच्छेद शलाकाएँ, उसी क्षेत्र का प्रथम वर्गमूल तथा इसका एक बार वर्ग करने पर सर्वावधि ज्ञान के विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्र के प्रदेशों का प्रमाण प्राप्त होता है। [जो असंख्यात लोक प्रमाण है। यद्यपि अवधिज्ञान रूपी पदार्थ को जानता है और रूपी पदार्थ लोक के बाहर नहीं है, अत: अवधिज्ञान का क्षेत्र लोक मात्र है, तथापि शक्ति की अपेक्षा असंख्यात लोक प्रमाण क्षेत्र कहा गया है।] इस सर्वावधि के उत्कृष्ट क्षेत्र प्रमाण से असंख्यात-असंख्यात स्थान आगे जाकर स्थितिबंध के कारणभूत कषाय परिणामों के स्थानों की वर्गशलाकाएँ, उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल तथा इसका एक बार वर्ग करने पर कषाय परिणामों के स्थानों की उत्पत्ति होती है अर्थात् आठों कर्मों के स्थितिबन्ध के कारणभूत परिणामों का जितना प्रमाण है उतनी संख्या प्राप्त होती है। इससे असंख्यात-असंख्यात स्थान आगे जाकर अनुभागबन्धाध्यवसाय स्थान की वर्गशलाकाएँ, उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल तथा इसका वर्ग करने पर ज्ञानावरणादि कर्मों के तीव्रादि शक्ति लक्षण वाले अनुभाग बन्ध में कारणभूत कषाय परिणामों के स्थानों का प्रमाण प्राप्त होता है। इससे असंख्यात-असंख्यात स्थान आगे जाकर निगोद शरीरों की वर्गशलाकाएँ, उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल तथा इसका एक बार वर्ग करने पर निगोद जीवों के समस्त शरीरों की उत्कृष्ट संख्या का प्रमाण प्राप्त होता है। इससे असंख्यात-असंख्यात स्थान आगे जाकर निगोदकाय स्थिति की वर्ग शलाकाएँ उसी के अर्धच्छेद, उसी के प्रथम वर्गमूल तथा इसका एक बार वर्ग करने पर निगोदकाय स्थिति का प्रमाण प्राप्त होता है।

शंका-निगोद कायस्थिति किसे कहते हैं?

समाधान-निगोद शरीर रूप से परिणत हुए पुद्गल परमाणुओं का उस आकार को छोड़े बिना उत्कृष्ट काल तक निगोद शरीरपने से अवस्थित रहने का नाम निगोद काय स्थिति है अर्थात् उस उत्कृष्ट काल के समयों का ग्रहण करना चाहिए।

निगोद काय स्थिति के प्रमाण से असंख्यात लोक प्रमाण वर्ग स्थान-असंख्यात लोक प्रमाण वर्ग स्थान आगे जाकर सर्वोत्कृष्ट योग के उत्कृष्ट अविभाग प्रतिच्छेदों की वर्ग शलाकाएँ, उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल तथा इसका एक बार वर्ग करने पर सर्वोत्कृष्ट योग के उत्कृष्ट अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण प्राप्त होता है। इससे अनन्त स्थान आगे जाकर केवलज्ञान के चतुर्थ वर्गमूल (2) के घन (8) को इसी चौथे वर्गमूल के घन के वर्ग [$2 \times 2 \times 2 = 8^2 = 64$] से गुणा करने पर [$8 \times 64$] = 512 इस धारा का अन्तिम स्थान प्राप्त होता है।

अर्थात् केवलज्ञान का चतुर्थ वर्गमूल × केवलज्ञान का प्रथम वर्गमूल

$2 \times 256 = 512$ इस धारा का अन्तिम स्थान है।

* घनाघन धारा के समस्त स्थानों का प्रमाण = केवलज्ञान की वर्गशलाओं से चार कम स्थान होते हैं।

शंका-512 ही इस द्विरूप घनाघन धारा का अन्तिम स्थान क्यों है?

समाधान-केवलज्ञान का प्रथम वर्गमूल [256], दूसरा वर्गमूल [16], तीसरा वर्गमूल [4] और

अन्तिम स्थान स्वयं केवलज्ञान [65536] इन चारों स्थानों का घनाघन इस धारा में संभव नहीं है, क्योंकि इन चारों का घनाघन का प्रमाण केवलज्ञान के प्रमाण से अधिक हो जाता है। *1

द्विरूपवर्गधारा, द्विरूपघनधारा, द्विरूपघनाघन इन तीनों धाराओं में पाये जाने वाले विशेष नियम :-

नियम नं. 1-जिस धारा में विरलन, देयक्रम से जो राशि उत्पन्न होती है, उस राशि की वर्गशलाका और अर्धच्छेद उसी धारा में नहीं प्राप्त हो सकते।

जैसे - माना अंक संदृष्टि में विरलन राशि = 16, देयराशि = 16 अत: 16 का विरलन कर, देय देकर गुणा करने पर एकट्ठी का प्रमाण प्राप्त होता है।

16×16×16×16×16×16×16×16×16×16×16×16×16×16×16×16

1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1

=18446744070616

इस एकट्ठी के अर्धच्छेद = 64 हैं, वर्गशलाकाएँ = 6 हैं, जो कि द्विरूप वर्गधारा में नहीं मिलेगी किन्तु एकट्ठी मिलेगी। यह नियम तीनों धाराओं के लिए है।

*1 यहाँ संख्या का मान बहुत छोटा होने के कारण घनाघन धारा के स्थान बनाने में असमर्थ हैं अन्यथा घनाघन धारा के प्रथम स्थान 512 है और इसके आगे अनंत स्थान है जो ऊपर दर्शाये गये हैं।

नियम नं. 2 तीनों धाराओं के स्वस्थान में, वर्ग से ऊपर वाले वर्ग में अर्धच्छेद नियम से दुगुने-दुगुने होते हैं और परस्थान में तिगुने-तिगुने होते हैं।

स्वस्थान - जहाँ निजधारा की अपेक्षा होती है, उसे स्वस्थान कहते हैं।

परस्थान - जहाँ परधारा की अपेक्षा होती है, उसे परस्थान कहते हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा अर्धच्छेद दुगुने-दुगुने होते हैं - जैसे - द्विरूपवर्गधारा का प्रथम स्थान 4 है और इसके अर्धच्छेद 2 हैं। इसके ऊपर दूसरा स्थान 16 है, जिसके अर्धच्छेद 4 हैं जो दो के दुगुने हैं। इसके ऊपर तीसरा स्थान 256 है, जिसके अर्धच्छेद 8 हैं जो 4 के दुगुने हैं। इसी प्रकार आगे जानना चाहिए। द्विरूपघनधारा का प्रथम स्थान 8 है, अर्धच्छेद 3 है। इसी धारा का दूसरा स्थान 64 है, अर्धच्छेद 6 हैं जो प्रथम स्थान से दुगुने हैं। आगे-आगे भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

द्विरूपघनाघन धारा का प्रथम स्थान 512 है, अर्धच्छेद 9 हैं। इसी धारा का दूसरा स्थान 2,62,144 हैं, अर्धच्छेद 18 हैं जो प्रथम स्थान से दुगुने हैं। इसी प्रकार आगे जानना चाहिए।

परस्थान की अपेक्षा अर्धच्छेद तिगुने-तिगुने होते हैं - जैसे - द्विरूपवर्गधारा का प्रथम स्थान 4 के अर्धच्छेद 2 हैं तथा द्विरूप घनधारा के दूसरे स्थान 64 के अर्धच्छेद 6 हैं जो 2 से तिगुने है। द्विरूपवर्गधारा के दूसरे स्थान 16 के अर्धच्छेद 4 हैं तथा द्विरूपघनधारा के तीसरे स्थान 4096 के अर्धच्छेद 12 हैं, जो 4 के तिगुने है। इसी प्रकार परस्थानापेक्षा नीचे के स्थान से ऊपर के स्थान के अर्धच्छेद नियम से तिगुने-तिगुने होते हैं।

यह नियम तीनों धाराओं में जानना चाहिए। विशेष यह है कि द्विरूपघनधारा से द्विरूपघनाघन धारा में

उसी स्थान पर अर्धच्छेद तिगुने होते हैं। द्विरूपघनधारा का प्रथम स्थान 8 उसके अर्धच्छेद 3 हैं और द्विरूपघनाघन धारा का प्रथम स्थान 512 है, उसके अर्धच्छेद 9 हैं जो 3 से तिगुने हैं।

नियम नं. 3– वर्ग स्थान से ऊपर के वर्ग स्थान की वर्गशलाकाएँ स्वस्थान में नियम से एक अधिक होती है तथा परस्थान में अपने सदृश ही होती है। जैसे द्विरूपवर्गधारा का प्रथम स्थान 2 का वर्ग 4 है। सब की वर्गशलाका 1 है, इसका स्थान 4 इसका वर्ग 16 है। इसकी वर्गशलाकाएँ 2 हैं, उसी प्रकार द्विरूपघनधारा में द्वितीय स्थान 8 के वर्ग 64 की वर्गशलाका 1 है, तीसरे स्थान 64 के वर्ग 4096 की वर्गशलाकाएँ 2 हैं। द्विरूपघनाघन धारा में द्वितीय स्थान 512 के वर्ग 262144 की एक वर्गशलाका एक और 262144 के वर्ग की दो वर्ग शलाकाएँ होती हैं। इस प्रकार स्वस्थान में उत्तरोत्तर स्थान की वर्गशलाका 1 अधिक है। परस्थान में वर्गशलाकाएँ समान होती हैं। अर्थात् द्विरूपवर्गधारा के प्रथम स्थान की वर्गशलाका 1, द्विरूपघनधारा के द्वितीय स्थान की वर्गशलाका 1 और द्विरूपघनाघन धारा के द्वितीय स्थान की वर्गशलाका 1 है, जो की परस्पर समान है।

नियम नं. 4– अर्धच्छेद निकालने का नियम–जितनी वर्ग शलाकाएँ हैं, उतनी बार 2 लिखकर परस्पर में गुणा करने से उसी राशि के अर्धच्छेद प्राप्त हो जाते हैं। जैसे – 256 की 3 वर्ग शलाकाएँ हैं अत: $2 \times 2 \times 2 = 8$ अर्धच्छेद प्राप्त हुए अर्थात् 256 के आठ अर्धच्छेद होते हैं।

यह नियम केवल द्विरूपवर्गधारा के लिए ही है, द्विरूपघनधारा व द्विरूपघनाघन धारा के लिए नहीं है।

नियम नं. 5– राशि निकालने का नियम – राशि के जितने अर्धच्छेद होते हैं, उतनी बार 2 लिखकर परस्पर गुणा करने से विवक्षित राशि प्राप्त होती है। जैसे – 256 के 8 अर्धच्छेद हैं, अत: 2 को (8 बार) $2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 = 256$ अथवा $2^8 = 256$ विवक्षित राशि प्राप्त हुई। यह नियम तीनों धाराओं के लिए है।

नियम नं. 6– दो के वर्ग से प्रारम्भ कर पूर्व–पूर्व का जितनी बार वर्ग करने पर विवक्षित राशि उत्पन्न हो उस राशि की वे वर्गित बार वर्गशलाकाएँ कहलाती हैं। जैसे – दो को एक बार वर्ग करने पर $[2^2 = 2 \times 2] = 4$ की उत्पत्ति हुई, अत: 4 की एक वर्गशलाका कहलाई। दो को दो बार वर्ग करने पर $(2)^2 = 2 \times 2 = 4$, $(4)^2 = 4 \times 4 = 16]$ 16 की उत्पत्ति हुई, अत: 16 की दो वर्गशलाकाएँ हुई। दो का तीन बार वर्ग करने से $(2)^2 = 2 \times 2 = 4$, $(4)^2 = 4 \times 4 = 16$, $(16)^2 = 16 \times 16 = 256$ की उत्पत्ति हुई, अत: 256 की तीन वर्गशलाकाएँ हुई। यह नियम तीनों धाराओं के लिए है। विशेषता यह है कि द्विरूपघनधारा में दो के घन से तथा द्विरूपघनाघन धारा में दो के घनाघन से प्रारम्भ कर पूर्व–पूर्व का जितनी बार वर्ग किया जाएगा उतनी वर्गशलाकाएँ होती हैं। जैसे – दो का घन 8 है, अत: 8 का एक बार वर्ग करने से $8 \times 8 = 64$ की उत्पत्ति हुई, अत: 64 की एक वर्ग शलाका हुई। 8 का दो बार वर्ग करने पर $(8^2)^2 = 8 \times 8 = 64$, $(64)^2 = 64 \times 64 = 4096$ की उत्पत्ति हुई, अत: 4096 की दो वर्गशलाकाएँ हुई। इसी प्रकार घनाघन धारा में दो का घनाघन 512 है, अत: 512 का एक बार वर्ग करने से $(512)^2 = 512 \times 512 = 262144$ की उत्पत्ति हुई। अत: इसकी एक वर्गशलाका हुई, क्योंकि एक बार वर्ग से उत्पन्न हुई है।

नियम नं. 7– विवक्षित राशि के अर्धच्छेदों के जितने अर्धच्छेद होते हैं, उतनी ही उस राशि की वर्ग

शलाकाएँ होती हैं। जैसे – 256 के अर्धच्छेद 8 और 8 के अर्धच्छेद 3 हुए, अत: 256 की तीन वर्ग शलाकाएँ हुई। यह नियम मात्र द्विरूपवर्गधारा में ही है, अन्य दो धाराओं में नहीं है।

नियम नं. 8– विवक्षित राशि को जितनी बार आधा करते–करते एक अंक रह जाय, उतने उस राशि के अर्धच्छेद कहलाते हैं। जैसे – 256 को 8 बार अथवा आधा–आधा करने पर एक अंक रहता है, अत: 256 के 8 अर्धच्छेद हुए। यह नियम तीनों धाराओं के लिए है।

नियम नं. 9– तीनों धाराओं में क्रम से संख्यात, असंख्यात और अनन्त वर्ग स्थान आगे जाकर संख्यात, असंख्यात और अनन्त की उत्पत्ति होती है। अर्थात् जघन्य असंख्यातासंख्यात रूप राशि पर्यन्त तो संख्यात वर्ग स्थान आगे जाते हैं, इसके ऊपर जघन्य अनंतानंत रूप राशि पर्यन्त असंख्यात वर्ग स्थान आगे जाते हैं। इसके ऊपर केवल ज्ञान पर्यन्त अनंत वर्ग स्थान आगे जाते हैं। यह नियम तीनों धाराओं के लिए है।

शंका–जिस राशि की वर्गशलाकाएँ 4 हैं तो वह विवक्षित राशि कौन सी है तथा उसके अर्धच्छेद कितने हैं?

समाधान–उस राशि के अर्धच्छेद – $2 \times 2 \times 2 \times 2 = 16$ [जितनी वर्गशलाकाएँ होती हैं उतनी बार 2 लिखकर गुणा करने पर अर्धच्छेद प्राप्त होते हैं।]

वह विवक्षित राशि है – $2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 = 65536$ (जितने अर्धच्छेद है उतनी बार 2 लिखकर गुणा करने पर) अथवा $(2)^{16} = 65536$ अथवा 2 का उत्तरोत्तर अर्थात् जितनी वर्ग शलाकाएँ हैं, उतनी बार वर्ग करने पर –

$(2)^2 = 4, (4)^2 = 16, (16)^2 = 256, (256)^2 = 65536$

शंका–किसी राशि के अर्धच्छेद 12 हैं तो वह राशि कौन सी है तथा उसकी वर्ग शलाकाएँ कितनी हैं?

समाधान–विवक्षित राशि – $2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 = 4096$

अथवा – $(2)^{12}$ – 4096

* विवक्षित राशि की वर्ग शलाकाएँ – विवक्षित राशि 4096 द्विरूपघनधारा की है। अत: 2 का घन 8 है, 8 का दो बार वर्ग करने पर $8 \times 8 = 64$, $64 \times 64 = 4096$ प्राप्त होता है, अत: 4096 की 2 वर्ग शलाकाएँ हुई।

शंका– 4096 की वर्गशलाकाएँ व अर्धच्छेद बताइए।

समाधान–16 राशि द्विरूपघनधारा की है इसकी वर्गशलाकाएँ = 2 का 2 बार वर्ग करने पर अर्थात् $[(2)^2]^2 = 16$ की उत्पत्ति होती है, अत: 16 की 2 वर्गशलाकाएँ हुई क्योंकि 2 बार वर्ग से उत्पन्न हुई है।

* विवक्षित राशि के अर्धच्छेद = $16 \div 2 = 8$, $8 \div 2 = 4$, $4 \div 2 = 2$, $2 \div 2 = 1$ अर्थात् विवक्षित राशि को आधा–आधा करने पर एक रह जाए, जितनी बार आधा किया उतनी बार को अर्धच्छेद

कहते हैं। अत: विवक्षित राशि चार बार आधा करने पर 1 प्राप्त हुई तो विवक्षित राशि के अर्धच्छेद = 4 हुए।

✲ 4096 द्विरूपघनधारा की राशि है इसकी वर्गशलाकाएँ = 2 का घन 8 है, 8 का दो बार वर्ग करने पर अर्थात् $[(8)^2]^2$ = 4096 की उत्पत्ति होती है अत: 4096 की 2 वर्गशलाकाएँ हुई क्योंकि 2 बार वर्ग करने से उत्पन्न हुई है।

✲ विवक्षित राशि के अर्धच्छेद = 4096 को 12 बार आधा-आधा करने पर 1 प्राप्त हुआ अत: विवक्षित राशि के 12 अर्धच्छेद हुए।

✲ 262144 द्विरूपघनाघनधारा की राशि है इसकी वर्गशलाकाएँ = 2 का घनाघन 512 है, 512 का एक बार वर्ग करने पर $[512]^2$ = 262144 की उत्पत्ति हुई अत: 262144 की एक वर्गशलाका हुई क्योंकि एक बार वर्ग से उत्पन्न हुई है।

✲ 262144 को 18 बार आधा-आधा करने पर 1 प्राप्त हुआ अत: विवक्षित राशि के 18 अर्धच्छेद हुए।

नोट- संख्या प्रमाण का कथन करने के बाद अब आगे उपमा प्रमाण का कथन करेंगे।

स्वाद स्वस्थता को खत्म करता है
और स्वार्थ निर्मलता को खत्म करता है।

अध्याय – 6

उपमा प्रमाण

उपमा शब्द की परिभाषा– प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मात्मक है। उनके स्वरूप निर्णय करने के लिए हम जो कुछ भी दृष्टान्त देकर शब्दों द्वारा उसे मापने का प्रयास करते हैं, उस मापने को उपमा प्रमाण कहते हैं। 'उप' अर्थात् उपचार से, 'मा' अर्थात् माप करे, अर्थात् उपचार से जो माप करे वह उपमा है।

उपचार से मापने का भाव यह है कि एक वस्तु के गुण–धर्म किसी दूसरी वस्तु में तो पाये नहीं जाते हैं, इसलिए आकार, दीप्ति, स्वभाव आदि धर्मों में थोड़ी बहुत समानता होने पर भी किसी एक वस्तु के द्वारा दूसरी वस्तु का ठीक कथन तो नहीं हो सकता है फिर भी दृष्टान्त द्वारा दूसरी वस्तु का कुछ न कुछ अनुभव या परिज्ञान अवश्य हो जाता है। इसलिए इस प्रक्रिया को उपमा कहते हैं।

'उप' का अर्थ पास भी होता है अर्थात् ऐसा कोई पदार्थ जिसके लिए उसकी उपमा दी जाती है, पास का अर्थात् उसका ठीक तरह से बोध कराने वाला होना चाहिए।

उपमा प्रमाण आठ प्रकार का होता है – (1) पल्य, (2) सागर, (3) सूच्यंगुल, (4) प्रतरांगुल, (5) घनांगुल, (6) जगच्छ्रेणी, (7) जगत्प्रतर, (8) लोक।

(1) पल्य के भेद – पल्य के तीन भेद हैं – (1) व्यवहार पल्य, (2) उद्धार पल्य, (3) अद्धा पल्य।

(i) व्यवहार पल्य – आदि के पल्य को व्यवहार पल्य कहते हैं। क्योंकि यह आगे के दो पल्यों का मूल है। एक योजन लम्बे, एक योजन चौड़े और एक ही योजन गहरे कुण्ड को उत्तम भोग–भूमि में जन्मा सात दिन की आयु के मेमने के रोमों के अग्र भाग के बराबर खण्डों से भरने पर, तथा प्रत्येक 100 वर्ष बाद एक–एक रोम निकालने पर जितने काल में सम्पूर्ण रोम समाप्त हो उतने काल के समयों की संख्या व्यवहार पल्य के समयों की संख्या है। इस व्यवहार पल्य की संख्या का माप किया जाता है। वह निम्न प्रकार से है–

व्यवहार पल्य में वर्ष = 1 प्रमाण योजन गोल व गहरे गर्त में 1–7 दिन तक के उत्तम भोगभूमिया भेड़ के बच्चे के बालों के अग्रभागों का प्रमाण × 100 वर्ष = $\times 4^3 \times 2000^3 \times 2^3 \times 2^3 \times 2^3 \times 2^3 \times 6^3 \times 500^3 \times 8^3 \times 8^3 \times 8^3 \times 8^3 \times 8^3 \times 8^3 \times 8^3$ = 45 अंक प्रमाण बालाग्र × 100 वर्ष अथवा 4134, 5263, 0308, 2031, 7774, 9512, 192000000000000000000 × 100 वर्ष

अथवा

नोट–पल्य के रोमखण्ड निकालने की वृहद् विधि आगे पृष्ठ संख्या 61 पर दी जा रही है वहाँ से जानें।

(ii) उद्धार पल्य – असंख्यात वर्षों के जितने समय है उतने–उतने खण्ड व्यवहार पल्य के प्रत्येक रोम के करना। इन समस्त रोम के खण्डों का समूह ही उद्धार पल्य के रोमों का प्रमाण है तथा जितना उद्धार पल्य के रोमों का प्रमाण है उतना ही उद्धार पल्य के समयों का प्रमाण है। अथवा यों कहें कि एक–एक समय में

एक-एक रोम निकालते हुए जितने समयों में उद्धार पल्य के सम्पूर्ण रोम खण्ड समाप्त हो उतने ही समयों का एक उद्धार पल्य होता है। व्यवहार पल्य × असंख्यात वर्षों के समयों की राशि = उद्धार पल्य। इस उद्धार पल्य से द्वीप समुद्रों का माप किया जाता है।

उद्धार पल्य के समय = उपरोक्त 45 अंक प्रमाण रोमों की संख्या x100 = 47 अंक प्रमाण वर्षों के समय x असंख्यात वर्षों के समय।

(iii) अद्धापल्य – उद्धार पल्य के सम्पूर्ण रोमों में से प्रत्येक रोम के असंख्यात वर्षों के समय प्रमाण खण्ड करने से अद्धापल्य के रोम खण्डों का प्रमाण प्राप्त होता है तथा अद्धापल्य के रोमखण्डों का जितना प्रमाण है उतने ही समयों का एक अद्धापल्य होता है। अथवा-एक-एक समय में एक-एक रोमखण्ड ग्रहण करते हुए जितने काल में अद्धापल्य के समस्त रोम समाप्त हो जाय, उतना ही काल अद्धापल्य का है। यहाँ पर मध्यम असंख्यात प्रयोजनीय है।

अद्धा और काल स्थिति ये एकार्थवाची शब्द हैं।

उद्धार पल्य × असंख्यात वर्षों के समयों की राशि = अद्धा पल्य। इस अद्धा पल्य से नारकी, तिर्यंच, देव व मनुष्यों की कर्म स्थिति, भव स्थिति, आयु स्थिति, काय स्थिति का माप किया जाता है।

अद्धा पल्य के समय = उद्धार पल्य के उपरोक्त समय × असंख्यात वर्षों के समय।

(2) सागर – सागर भी काल को मापने की एक इकाई है, सागर पल्यों से बहुत बड़ा होता है। सागर के तीन भेद हैं – (i) व्यवहार सागर, (2) उद्धार सागर, (3) अद्धा सागर।

(i) व्यवहार सागर – व्यवहार पल्य × 10 कोड़ा कोड़ी = एक व्यवहार सागर।

(ii) उद्धार सागर – उद्धार पल्य × 10 कोड़ा कोड़ी = एक उद्धार सागर।

2½ उद्धार सागर (25 कोड़ा कोड़ी उद्धार पल्य) में जितने समय खण्ड होते हैं उतने ही सब द्वीप-समुद्रों की संख्या हैं।

(iii) अद्धा सागर – अद्धा पल्य × 10 कोड़ा कोड़ी = एक अद्धा सागर।

10 कोड़ा कोड़ी अद्धा सागर = 1 अवसर्पिणी काल या 1 उत्सर्पिणीकाल, 1 अवसर्पिणीकाल और 1 उत्सर्पिणीकाल = 1 कल्पकाल अर्थात् 20 कोड़ा कोड़ी सागर का एक कल्प काल कहलाता है जिनके दो भेद हैं- 1. उत्सर्पिणी 2. अवसर्पिणी

एक अवसर्पिणी = छह काल [सुषमासुषमा, सुषमा, सुषमा-दुषमा, दुषमा-सुषमा, दुषमा, दुषमा-दुषमा]

सुषमा-सुषमा काल	= 4 कोड़ा कोड़ी अद्धा सागर
सुषमा काल	= 3 कोड़ा कोड़ी अद्धा सागर
सुषमा-दुषमा काल	= 2 कोड़ा कोड़ी अद्धा सागर

दुषमा–सुषमा काल	= 42000 वर्ष कम 1 कोड़ा कोड़ी अद्धा सागर
दुषमा काल	= 21000 वर्ष
दुषमा–दुषमा काल	= 21000 वर्ष

उत्सर्पिणी के छह काल = दु:षमा–दु:षमा, दु:षमा, दु:षमा–सुषमा, सुषमा–दु:षमा, सुषमा, सुषमा, सुषमा।

शंका–उत्सर्पिणी काल किसे कहते हैं?

समाधान–जिसमें मनुष्य तिर्यंचों की आयु, बल, शरीरावगाहना, संहनन शक्ति आदि क्रमश: बढ़ते हुए होते हैं उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं। जैसे–उत्सर्पिणी के प्रथमकाल में मनुष्यों की अवगाहना एक हाथ की होगी तो द्वितीय काल में 7 हाथ की हो जायेगी। इसी प्रकार तृतीय काल में उत्कृष्ट अवगाहना 525 धनुष हो जायेगी। इसी प्रकार संहनन शक्ति आदि भी जानना चाहिए। आयु क्रमश: 20, 120, एक कोटि पूर्व वर्ष, एक पल्य, दो पल्य, तीन पल्य जानना चाहिए।

शंका–अवसर्पिणी काल किसे कहते हैं?

समाधान–जिसमें आयु, बल, शरीरावगाहना का क्रमश: ह्रास होता जाता है। जैसे–अवसर्पिणी के प्रथम काल में जीवों की अवगाहना तीन कोश फिर घटते–घटते द्वितीय काल में दो कोश, तृतीय काल में एक कोश, चतुर्थ काल में 525 धनुष, पंचम काल में 7 हाथ, छटवें काल एक हाथ इसी प्रकार बल, आयु भी लगा लेना चाहिए। आयु क्रमश: तीन, दो, एक पल्य, एक कोटि पूर्व वर्ष, 120 वर्ष, 20 वर्ष जानना चाहिए।

छहों कालों की परिभाषा–

सुषमा सुषमा	= जिसमें जीवों को सुख ही सुख होता है।
सुषमा	= जिसमें जीवों को सुख होता है।
सुषमा दु:षमा	= पहले सुख होता है पश्चात् किंचित् दु:ख होता है।
दु:षमा सुषमा	= पहले दु:ख बाद में सुख होता है।
दु:षमा	= दु:ख होता है।
दु:षमा दु:षमा	= दु:ख ही दु:ख होता है।
1 कल्पकाल	= 20 कोड़ा कोड़ी सागर
1 सागर	= 10 कोड़ा कोड़ी पल्य

1 कल्पकाल में पल्यों की संख्या = 20 कोड़ा कोड़ी×10 कोड़ा कोड़ी अर्थात् 20×10^{30} या दो नील शंख पल्य (2000000000000000000000000000000) यह संख्या 31 अंक प्रमाण है। अथवा 20 लाख कोड़ी कोड़ा कोड़ी।

(3) सूच्यंगुल – जो द्रव्य आदि, मध्य व अन्त से रहित हो, एक प्रदेशी हो, इन्द्रियों द्वारा अग्राह्य एवं विभाग से रहित हो, उसे परमाणु कहते हैं, ऐसे अनंतानंत परमाणु द्रव्यों से एक अवसन्नासन्न स्कंध उत्पन्न होता है।

8 अवसन्नासन्न = 1 सन्नासन्न, 8 सन्नासन्न = 1 त्रुटिरेणु,

8 त्रुटिरेणु = 1 त्रसरेणु, 8 त्रसरेणु = 1 रथरेणु,
8 रथरेणु = एक उत्तम भोगभूमि के मनुष्य का बालाग्र,
8 उत्तम भोगभूमि का बालाग्र = 1 मध्यम भोगभूमि का बालाग्र,
8 मध्यम भोगभूमि का बालाग्र = 1 जघन्य भोगभूमि का बालाग्र,
8 जघन्य भोगभूमि का बालाग्र = 1 कर्मभूमि का बालाग्र,
8 कर्मभूमि के बालाग्र = 1 लीक,
8 लीक = एक जूं [चौकोर सरसों]
8 जूं = एक जौ, 8 जौ = 1 अंगुल।

अंगुल के भेद व लक्षण – अंगुल के तीन भेद हैं - (i) उत्सेधांगुल, (ii) प्रमाणांगुल, (iii) आत्मांगुल।

(i) उत्सेधांगुल/व्यवहारांगुल/सूच्यंगुल – 8 जौ का जो एक अंगुल बताया अर्थात् लगभग पौन इंच लम्बी एक प्रदेश चौड़ी आकाश प्रदेशों की पंक्ति को सूच्यंगुल कहते हैं। वही उत्सेधांगुल है। इससे देव, मनुष्य, तिर्यंच व नारकियों के शरीर की ऊँचाई का प्रमाण, देवों के निवास स्थान व नगरादि का प्रमाण जाना जाता है।

पल्य के जितने अर्धच्छेद हैं उतनी बार पल्य रखकर परस्पर गुणा करके जो राशि उत्पन्न हो, वही सूच्यंगुल है। जो कि एक अंगुल लम्बे क्षेत्र में जितने प्रदेश हैं, उतने प्रमाण हैं।

सूत्र – सूच्यंगुल = [पल्य × पल्य × .... पल्य के अर्धच्छेद प्रमाण बार]

शंका– एक अंगुल लम्बाई व एक प्रदेश चौड़ाई वाले आकाश प्रदेश पंक्ति में कितने आकाश प्रदेश होते हैं?

समाधान–उपरोक्त पल्य के अर्धच्छेद जितने हो उनका विरलन करों फिर एक एक संख्या पर पल्य देय देकर आपस में गुणा करो जो संख्या प्राप्त हो उतने आकाश प्रदेश उक्त प्रदेश में आ जाते हैं। जैसे–माना पल्य = 16, इसके अर्धच्छेद = 4 हुए, इनका विरलन = 1 1 1 1

देय = 16x16x16x16=65536 अथवा (पल्य)$^{\text{पल्य के अर्धच्छेद}}$

अत: 65536 यह सूच्यंगुल क्षेत्र में आकाश प्रदेशों की संख्या है।

नोट– यहाँ अंक संदृष्टि से मात्र एक मानक है अर्थ संदृष्टि में पल्य असंख्यातासंख्यात वर्षों का होता है उसके अर्धच्छेद भी असंख्यात ही होते हैं।

शंका–इतने छोटे स्थान में इतने आकाश प्रदेश कैसे आ सकते हैं?

समाधान–यह कोई दोष नहीं है क्योंकि कालाणु की अपेक्षा आकाश का प्रदेश अत्यंत सूक्ष्म होता है, इसलिए आ जाते हैं।

कहा भी है–

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं, हेतुर्भिन्नै हन्यते।
आज्ञा सिद्धं तु तद्ग्राह्यं, नान्यथावादिनो जिना:।।

ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है आचार्यों ने लिपिबद्ध किया है अत: जिनेन्द्र का तत्त्व अत्यंत सूक्ष्म है तर्क से और प्रतिवादियों से खण्डित नहीं हो सकता है आगम और अनुभव से इसे जाना जा सकता है क्योंकि जिनेन्द्र अन्यथावादी नहीं होते।

(ii) प्रमाणांगुल – पाँच सौ उत्सेधांगुलों का एक प्रमाणांगुल होता है। यह प्रमाणांगुल अवसर्पिणी काल के (प्रथम) भरत चक्रवर्ती का एक अंगुल है। द्वीप, समुद्र, कुलाचल, वेदी, नदी, कुण्ड या सरोवर, जगती और भरतादिक क्षेत्रों का माप इसी अंगुल से होता है।

(iii) आत्मांगुल – जिस-जिस काल में भरतैरावत क्षेत्रों में जो-जो मनुष्य हुआ करते हैं, उस-उस काल में उन्हीं मनुष्यों के अंगुल का नाम आत्मांगुल है। झारी, कलश, दर्पण, वेणु, भेरी, युग, शय्या, शकट, हल, मूसल, शक्ति, तोमर, सिंहासन, वाण, नालि, अक्ष, चामर, दुंदुभि, पीठ, छत्र, मनुष्यों के निवास स्थान व नगर और उद्यानादिकों का माप आत्मांगुलों से होता है। मनुष्यों की अवगाहना में वृद्धि-ह्रास होने से इनके नगरादिक का माप आत्मांगुल से होता है।

6 अंगुल = 1 पाद, 2 पाद = 1 बितस्ति
2 बितस्ति = 1 हस्त, 2 हस्त = 1 किष्कु
2 किष्कु = 1 दंड/युग/धनुष/मूसल/नाली/नाड़ी
2000 दण्ड/धनुष = 1 कोस
4 कोश = 1 योजन।

(4) प्रतरांगुल – सूच्यंगुल के वर्ग को प्रतरांगुल कहते हैं। जो एक अंगुल लम्बे और एक अंगुल चौड़े क्षेत्र के प्रदेशों का प्रमाण है।

सूत्र – सूच्यंगुल × सूच्यंगुल अथवा (सूच्यंगुल)^2 = प्रतरांगुल।

(5) घनांगुल – सूच्यंगुल के घन को घनांगुल कहते हैं। जो एक अंगुल लम्बे, एक अंगुल चौड़े व एक अंगुल ऊँचे क्षेत्र के प्रदेशों के बराबर है।

सूत्र – सूच्यंगुल × सूच्यंगुल × सूच्यंगुल अथवा (सूच्यंगुल)^3 = घनांगुल।

(6) जगच्छ्रेणी – पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग प्रमाण घनांगुल स्थापन कर परस्पर गुणा करने से जगच्छ्रेणी की प्राप्ति होती है। जो मध्यलोक से ऊर्ध्व एवं अधोलोक पर्यंत 7-7 राजू के प्रदेशों के प्रमाण है। अर्थात् 7 राजू लम्बी एक प्रदेश चौड़ी आकाश प्रदेशों की पंक्ति जगत् श्रेणी कहलाती है।

सूत्र – [घनांगुल × घनांगुल × घनांगुल × .... पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यात भाग प्रमाण बार]

(7) जगत्प्रतर – जगच्छ्रेणी के वर्ग को जगत्प्रतर कहते हैं। जो जगच्छ्रेणी प्रमाण लम्बे व चौड़े क्षेत्र के प्रदेशों के प्रमाण है। अर्थात् प्रतर = फैलाना जगत्श्रेणी प्रमाण लंबे जगत्श्रेणी प्रमाण चौड़े आकाश प्रदेशों

की पंक्ति को जगत् प्रतर कहते हैं।

सूत्र – $(\text{जगच्छ्रेणी})^2$ = जगत्प्रतर।

(8) **घनलोक** – जगच्छ्रेणी के घन को जगत् घन या घनलोक कहते हैं। जो जगच्छ्रेणी प्रमाण लम्बे, चौड़े ऊँचे क्षेत्र के प्रदेशों के प्रमाण हैं अर्थात् 343 घनराजू प्रमाण हैं। पूर्वोक्त लम्बे+चौड़े+ऊँचे क्षेत्र को घन लोक कहते हैं।

सूत्र – घनलोक = $(\text{जगच्छ्रेणी})^3$

पल्य के रोमों की संख्या निकालने की संख्या विधि

एक योजन लम्बे, 1 योजन चौड़े और 1 योजन गहरे वृत्ताकार कुण्ड की सूक्ष्म परिधि =

वृत्ताकार क्षेत्र की सूक्ष्म परिधि $= \sqrt{(\text{व्यास})^2 x 10}$

$= \sqrt{(1)^2 x 10}$

$= \sqrt{1 x 10} = \sqrt{10} = 3\frac{1}{6} = \frac{19}{6}$ प्रमाण योजन

इसी कुण्ड का सूक्ष्म क्षेत्रफल–

सूक्ष्म क्षेत्रफल $= \text{सूक्ष्म परिधि} \times \frac{\text{व्यास}}{4}$

$= \frac{19}{6} x \frac{1}{4} = \frac{19}{24}$ प्रमाण वर्ग योजन

इसी कुण्ड का सूक्ष्म घनफल–

सूक्ष्म घनफल = सूक्ष्म क्षेत्रफल x वेध (गहराई)

$= \frac{19}{24} x 1 = \frac{19}{24}$ प्रमाण घन योजन

प्रमाण घन योजन को व्यवहार घन योजन में बदलना है–

जब 1 प्रमाण योजन क्षेत्र में 500 व्यवहार योजन होते है

तब $\frac{19}{24}$ प्रमाण योजन क्षेत्र में कितने व्यवहार योजन होंगे ?

त्रैराशिक करने पर प्रमाण राशि=1, फल राशि=500, इच्छा राशि $= \frac{19}{24}$

"**घन राशि का गुणकार या भागहार घनात्मक ही होता है**" इस नियम के अनुसार $\frac{19}{24}$ को तीन बार 500 से गुणा करने पर $= \frac{19}{24} 500 x 500 x 500$ व्यवहार घन योजन

व्यवहार घन योजन को अंगुल में बदलना है–

एक व्यवहार योजन में 768000 अंगुल होते हैं।

तब $\frac{19}{24}$ x500x500x500 व्यवहार योजन में कितने अंगुल होंगे है ?

उपरोक्त नियम के अनुसार = $\frac{19}{24}$x500x500x500x768000x768000x768000 घनांगुल

घनांगुल को रोम में बदलना है–

एक अंगुल में 8 यव, 1 यव के 8 तिल, 1 तिल की 8 लीख, 1 लीख के 8 कर्मभूमिज रोम, एक कर्मभूमिज रोम के 8 जघन्य भोगभूमिज रोम, एक जघन्य भोगभूमिज रोम के 8 मध्यम भोगभूमिज रोम और 1 मध्यम भोगभूमिज रोम के 8 उत्तम भोगभूमिज रोम होते हैं। यहाँ 7 बार 8 हुए, इन्हें घनात्मक करने पर 8 की संख्या (7x3) = 21 बार प्राप्त हुई।

जब एक घनांगुल में 8 (21 बार) प्रमाण रोम है तब उपर्युक्त घनांगुलों में कितने–कितने रोम होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर–

$\frac{19}{24}$ x500x500x500x768000x768000x768000x8x8x8x8x8x8x8x8x8x8x8x8

x8x8x8x8x8x8x8x8x8=413452630308203177749512192000000000000000 0000 यह पल्य के रोमों की संख्या है।

अथवा

सभी शून्यों को अलग करने पर अर्थात् 15 शून्य

अत: $\frac{19}{24}$ 125x256x3x256x3x256x3x256x256x2x512x512x512x512x512x512 x512 आपस में गुणा करने पर उक्त संख्याएँ प्राप्त होती है।

अक्षर संज्ञा से अंकों का ज्ञान कराने वाली गाथा सूत्र–

''कटपयपुरस्थ वर्णैर्नवनपञ्चाष्टकल्पितैः क्रमशः।
स्वरञन शून्यं संख्या मात्रोपरिमाक्षरं त्याज्यं।।''

अर्थ–क अक्षर से झ अक्षर पर्यन्त (9 अक्षर), ट अक्षर से ध अक्षर पर्यन्त (9 अक्षर) तथा प वर्ग 5 अक्षर और य से प्रारम्भ कर ह पर्यन्त (आठ) अक्षरों में क्रम से जो अक्षर जितने नम्बर का हो वही अंक समझना चाहिए तथा अकारादि स्वर, ञ और न जहाँ हों उनका शून्य ग्रहण करना चाहिए। तथा मात्राओं और संयोगी अक्षरों को छोड़ देना चाहिए।

यथा–	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	(ये नौ)
	1	2	3	4	5	6	7	8	9	
	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	(ये नौ)
	1	2	3	4	5	6	7	8	9	
	प	फ	ब	भ	म					(ये पाँच)

1	2	3	4	5				
य	र	ल	व	श	ष	स	ह	(ये आठ)
1	2	3	4	5	6	7	8	

उपर्युक्त गाथा के अनुसार उल्लिखित अक्षरों से पल्य के अंकों को ग्रहण करना चाहिए।

त्रिलोकसार ग्रन्थ गाथा नं. 98 से पल्य के रोमों की संख्या निकालने के लिए अक्षर संज्ञा से अंक प्राप्त किए गये हैं।

गाथा- **वटलवणरोचगोनग - नजरनगंकाससससघधमपरकधरं।**
विगुणणव सुण्णसहिया, पल्लस्स दु रोम परिसंखा।98।।

अर्थ- व (4), ट (1), ल (3), ण (5), र (2), च (6), ग (3), न (0), ग (3), न (0), ज (8), र (2), न (0), ग (3), क (1), स (7), स (7), स (7), घ (4), ध (9), म (5), प (1), र (2), क (1), ध (9), र (2) अर्थात् 413452630308203177749512192 इस संख्या को 18 शून्यों सहित करने पर (413452630308203177749512192000000000000000000) पल्य के रोमों की संख्या प्राप्त होती है। यह संख्या 45 अंक प्रमाण है।

यहाँ तक उपमा प्रमाण को जाना अगले अध्याय में नवीन विषय प्रमाद के विषय में अध्ययन करेंगे प्रमाद के पाँच भेद होते हैं उन पाँच भेदों के आपस में गुणा करके 80 भेद हो जाते हैं वे किस प्रकार होते हैं? उनको आगे जानने का प्रयास करते है...

अशुभोपयोग से कर्मों का बंध,
शुभोपयोग से कर्मों का संवर और
शुद्धोपयोग से कर्मों की निर्जरा होती है।

अध्याय-7

अक्षसंचार गणित निर्देश

अक्ष संचार विषयक शब्दों का परिचय –

संखा तह पत्थारो, परियट्टण णट्ठ तह समुद्दिट्ठं

एदे पंचपयारा, पमदसमुक्कित्तणे णेया ।। [गो.जी.गा.नं.-35]

संख्या, प्रस्तार, परिवर्तन, नष्ट और समुद्दिष्ट इन पाँच प्रकारों द्वारा प्रमाद के विषय में जानना चाहिए। [ऐसे ही साधु के 84,00,000 उत्तर गुण अथवा 18000 शील के गुण इत्यादि सर्वत्र भी ये पाँच बातें जानने योग्य है। यहाँ प्रमाद का प्रकरण होने से केवल प्रमाद के आधार पर कथन किया गया है।]

- ✲ आलापों के भेदों की गणना को **संख्या** कहते हैं।
- ✲ संख्या के रखने या निकालने के क्रम को **प्रस्तार** करते हैं।
- ✲ एक भेद से दूसरे भेद पर पहुँचने के क्रम को **परिवर्तन** कहते हैं।
- ✲ संख्या के द्वारा भेद के निकालने को **नष्ट** कहते हैं।
- ✲ भेद को रखकर संख्या निकालने को **समुद्दिष्ट** कहते हैं।

संख्या (भंग का जोड़) निकालने का तरीका

प्रमाद	विकथा × कषाय × इन्द्रियविषय × निद्रा × प्रणय
संख्या	4 × 4 × 5 × 1 × 1 = 80

सव्वे पि पुव्वभंगा, उपरिम भंगेसु एक्कमेक्केसु ।

भेलंति त्ति य कमसो, गुणिदे उप्पज्जदे संखा ।। (गो.जी.गा.नं.-36)

पूर्व के सब ही भंग आगे के प्रत्येक भंग में मिलते हैं, इसलिए क्रम से गुणा करने पर संख्या उत्पन्न होती है।

प्रस्तार निकालने का तरीका नं. 1

पढमं पमदपमाणं, कमेण णिक्खिवयि उवरिमाणं च ।

पिंडं पडि एक्केकं, णिक्खित्ते होदि पत्थारो ।। [गो.जी.गा.नं.-37]

अर्थ – प्रथम प्रमाद के प्रमाण का विरलन कर क्रम से निक्षेपण करके उसके एक-एक रूप के प्रति आगे के पिण्ड रूप प्रमाद के प्रमाण का निक्षेपण करने पर प्रस्तार होता है।

विकथा 4 = 1 1 1 1 = 4

कषाय 4 = 4 + 4 + 4 + 4 = 16

| | | |

इन्द्रिय विषय 5=5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 = 80

| | | | | | | | | | | | | | | |

प्रस्तार निकालने का तरीका नं. 2

णिक्खित्तु विदियमेत्तं, पढमं तस्सुवरि विदियमेक्केक्कं ।

पिंडं पडि णिक्खेओ, एवं सव्वत्थ कायव्वो ।। [गो.जी.गा.नं.-38]

अर्थ - दूसरे प्रमाद का जितना प्रमाण है उतनी जगह पर प्रथम प्रमाद के पिण्ड को रखकर उसके ऊपर एक-एक पिण्ड के प्रति आगे के प्रमाद में से एक-एक का निक्षेपण करना और आगे भी सर्वत्र इसी प्रकार जानना चाहिए।

विकथा 4 -	। । । ।
कषाय 4 -	। । । ।
	4 + 4 + 4 + 4 = 16
इन्द्रिय विषय 5 -	। । । । ।
	16 + 16 + 16 + 16 + 16 = 80

प्रथम प्रस्तार का परिवर्तन

तदियक्खो अंतगदो आदिगदे संकमेदि विदियक्खो ।

दोण्णि वि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि पढमक्खो ।। [गो.जी.गा.नं.-39]

अर्थ - प्रमाद का तृतीय स्थान अन्त को प्राप्त होकर जब फिर से आदिस्थान को प्राप्त हो जाय तब प्रमाद का दूसरा स्थान भी बदल जाता है। इसी प्रकार जब दूसरा स्थान भी अन्त को प्राप्त होकर फिर आदि को प्राप्त हो जाए तक प्रथम प्रमाद का स्थान बदलता है। निद्रा और स्नेह इनका दूसरा भेद नहीं है, इसलिए इनमें अक्षसंचार नहीं होता।

स्त्री	भक्त →	राष्ट्र →	अवनिपाल	
क्रोध	मान →	माया →	लोभ	
स्पर्शन	रसना	घ्राण	चक्षु	कर्ण

जब इन्द्रिय स्थान कर्ण तक होकर पुन: स्पर्शन पर आता है, तब क्रोध का स्थान बदलकर मान होता है। इसी प्रकार जब कषाय स्थान लोभ से बदलकर क्रोध पर आता है तब विकथा में स्त्री कथा का स्थान छूटकर भक्त कथा का स्थान आता है।

दूसरा प्रस्तार का परिवर्तन

पढमक्खो अन्तगदो, आदिगदे संकमेदि विदियक्खो ।

दोण्णि वि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि तदियक्खो ।।

अर्थ – प्रथमाक्ष जो विकथा रूप प्रमाद स्थान है वह घूमता हुआ जब क्रम से अंत तक पहुँचकर फिर स्त्री कथा रूप आदि स्थान पर आता है तब दूसरा कषाय स्थान क्रोध को छोड़कर मान पर आता है। इसी प्रकार जब दूसरा कषाय स्थान भी अंत तक प्राप्त होकर फिर आदि [क्रोध] स्थान पर आता है तब तीसरा इन्द्रिय स्थान बदलता है अर्थात् स्पर्शन को छोड़कर रसना पर आता है।

स्पर्शन	→ रसना →	घ्राण →	चक्षु →	कर्ण
क्रोध	→ मान →	माया →	लोभ	
स्त्री	भक्त	राष्ट्र	अवनिपाल	

नष्ट लाने की विधि

सगमाणेहिं विभत्ते सेसं लक्खित्तु जाण अक्खपदं ।

लद्धे रूवं पक्खिव सुद्धे अंते ण रूपपक्खेवो ।। [गो.जी.गा.नं.–41]

अर्थ – किसी ने जितनेवाँ प्रमाद का भंग पूछा हो उतनी संख्या को रखकर उसमें क्रम से प्रमाद प्रमाण का भाग देना चाहिए। भाग देने पर जो शेष बचे उसको अक्ष स्थान जो लब्ध आवे उसमें एक मिलाकर दूसरे प्रमाद के प्रमाण का भाग देना चाहिए और भाग देने से जो शेष रहे उसको अक्षस्थान समझना चाहिए। किन्तु शेष स्थान में यदि शून्य हो तो अन्त का अक्षस्थान समझना चाहिए और उसमें एक नहीं मिलाना चाहिए।

उदा. (1) संख्या = 20वां भंग [प्रथम प्रस्तार से भंग निकालना]

* $\frac{20}{5}$ (इन्द्रिय का जोड़) = 4 शेष = 0 ↓ अंतिम इन्द्रिय = कर्ण

* $\frac{4}{4}$ (कषाय का जोड़) = 1 शेष = 0 ↓ अंतिम कषाय = लोभ

* 1 ↓ पहली कथा = स्त्री कथा

अत: 20वें भंग का आलाप – स्नेहवान निद्रालु कर्ण इन्द्रिय के वशीभूत लोभी स्त्री कथालापी।

उदा. (2) संख्या = 20वाँ भाग [दूसरे प्रस्तार से भंग निकालना]

✻ $\frac{20}{4}$ (विकथा का जोड़) = 5 शेष = 0 → अंतिम विकथा = अवनिपाल

✻ $\frac{5}{4}$ (कषाय का जोड़) = 1 शेष = 0 → प्रथम कषाय = क्रोध

✻ 1+1=2 → दूसरी इन्द्रिय = रसना

अत: 20वें भंग का आलाप-अवनिपाल कथालापी क्रोधी रसना इन्द्रिय के वशीभूत निद्रालु स्नेहवान।

उद्दिष्ट लाने की विधि

संठाविदूण रूवं, उवरीदो संगुणित्तु सगमाणे ।

अवणिज्ज अणंकिदयं, कुज्जा एमेव सव्वत्थ ।। [गो.जी.गा.नं.-42]

अर्थ - एक का स्थापन करके आगे के प्रमाद का जितना प्रमाण है उसके साथ गुणाकार करना चाहिए। उसमें जो अनंकित (शेष रहे प्रमाद) हो, उसको घटाएँ। इसी प्रकार आगे भी करने से उद्दिष्ट का प्रमाण निकलता है।

उदा. – राष्ट्रकथालापी मायावी घ्राण इन्द्रियवश निद्रालु स्नेहवान कौन सा भंग है ?

(1) प्रथम प्रस्तार से–

1 × 4 (विकथा का जोड़)	= 4–1 (राष्ट्रकथा के बाद 1 कथा रही)	= 3
3 × 4 (कषाय का जोड़)	= 12–1 (मायावी कषाय के बाद 1 कषाय रही)	= 11
11 × 5 (इन्द्रिय का जोड़)	= 55–2 (घ्राण के बाद 2 इन्द्रिय रही)	= **53वाँ भंग**

(2) दूसरे प्रस्तार से –

1 × 5 (इन्द्रिय का जोड़)	= 5–2 (शेष इन्द्रिय)	= 3
3 × 4 (कषाय का जोड़)	= 12 – 1 (शेष कषाय)	= 11
11 × 4 (विकथा का जोड़)	= 44 – 1 (शेष विकथा)	= **43वाँ भंग**

प्रथम प्रस्तार का गूढ़ यंत्र

इगवितिचपणखपणदशपण्णरसं खवीसतालसट्ठी य ।

संठविय पमदठाणे, णट्ठुद्दिट्ठं च जाण तिट्ठाणे ।। [गो.जी.गा.नं.-43]

अर्थ – तीन प्रमाद स्थानों में क्रम से प्रथम पाँच इन्द्रियों के स्थान पर 1, 2, 3, 4, 5 को क्रम से तथा चार कषायों के स्थान पर क्रम से 0, 5, 10, 15 तथा विकथाओं के स्थान पर क्रम से 0, 20, 40, 60 स्थापन करना।

ऐसा करने से नष्ट व उद्दिष्ट अच्छी तरह समझ में आ सकते हैं। क्योंकि जो भंग विवक्षित हो उसके स्थानों पर रखी हुई संख्या को परस्पर जोड़ने से यह कितनेवां भंग है अथवा इस संख्या वाले भंग में कौन-कौन सा प्रमाद आता है। यह समझ में आ सकता है।

स्पर्शन 1	रसना 2	घ्राण 3	चक्षु 4	कर्ण 5
क्रोध 0	मान 5	माया 10	लोभ 15	
स्त्री 0	भक्त 20	राष्ट्र 40	अवनिपाल 60	

दूसरे प्रस्तार का गूढ़ यंत्र

इगिवितिचखचडवारम् खसोलरागट्ठदालचउसट्ठिं ।

संठविय पमदठाणे, णट्ठुद्दिट्ठं च जाण तिट्ठाणे ।। [गो.जी.गा.नं.-44]

अर्थ – दूसरे प्रस्तर की अपेक्षा तीनों प्रमाद स्थानों में क्रम से प्रथम विकथाओं के स्थान पर 1/2/3/4 स्थापन करना तथा कषायों के स्थान पर 0/4/8/12 स्थापन करना और इन्द्रियों के स्थान पर 0/16/32/48/64 स्थापन करना ऐसा करने से दूसरे प्रस्तार की अपेक्षा भी पूर्व की तरह नष्ट व उद्दिष्ट समझ में आ सकते हैं।

स्त्री 1	भक्त 2	राष्ट्र 3	अवनिपाल 4	
क्रोध 0	मान 4	माया 8	लोभ 12	
स्पर्शन 0	रसना 16	घ्राण 32	चक्षु 48	कर्ण 64

इन यंत्रों का उपयोग करने की विधि नीचे है –

* नष्ट निकालने के लिए – संख्या से भंग

  जिन कोठों का जोड़ मिलाने से वह संख्या मिले उन कोठों के प्रमादों का भंग होगा।

* उद्दिष्ट निकालने के लिए – भंग से संख्या

  जिन कोठों में वह प्रमाद के उत्तर भेद हो उन कोठों के अंक को जोड़ने पर संख्या प्राप्त होगी।

नोट – यहाँ हमने प्रमाद के 80 भंगों का विवेचन किया है। प्रमाद के विस्तृत रूप से 37500 भंग भी होते हैं, उनका विवेचन भी इसी प्रकार से किया जा सकता है।

प्रमाद के 37500 भंग का यंत्र

0	स्त्री	0	अनंतानुबंधी क्रोध	0	स्पर्शन	0	स्त्यानगृद्धि	1	स्नेह
1500	अर्थ	60	अनंतानुबंधी मान	10	रसना	2	निद्रानिद्रा	2	मोह
3000	भोजन	120	अनंतानुबंधी माया	20	घ्राण	4	प्रचलाप्रचला		
4500	राजा	180	अनंतानुबंधी लोभ	30	चक्षु	6	निद्रा		
6000	चोर	240	अप्रत्याख्यान क्रोध	40	कर्ण	8	प्रचला		
7500	वैर	300	अप्रत्याख्यान मान	50	मन				
9000	परपाखंड	360	अप्रत्याख्यान माया						
10500	देश	420	अप्रत्याख्यान लोभ						
12000	भाषा	480	प्रत्याख्यान क्रोध						
13500	गुणबंध	540	प्रत्याख्यान मान						
15000	देवी	600	प्रत्याख्यान माया						
16500	निष्ठुर	660	प्रत्याख्यान लोभ						
18000	परपैशून्य	720	संज्वलन क्रोध						
19500	कंदर्प	780	संज्वलन मान						
21000	देशकालानुचित	840	संज्वलन माया						
22500	भंड	900	संज्वलन लोभ						
24000	मूर्ख	960	हास्य						
25500	आत्मप्रशंसा	1020	रति						
27000	परपरिवाद	1080	अरति						
28500	परजुगुप्सा	1140	शोक						
30000	परपीड़ा	1200	भय						
31500	कलह	1260	जुगुप्सा						
33000	परिग्रह	1320	पुरुषवेद						
34500	कृष्याद्यारंभ	1380	स्त्रीवेद						
36000	संगीत वाद्य	1440	नपुंसक वेद						

इस अध्याय में हमने प्रमाद को समझा अलगे अध्याय में- एक, दो, तीन आदि संयोगी भंग जो कि मिथ्यात्व आदि गुणस्थानों में एक जीवादि के माध्यम से दोष लगते हैं उनमें भंगों का ज्ञान कराया है पश्चात् श्रेणी व्यवहार अत्यंत महत्त्वपूर्ण विधि जिसे त्रैराशिक या लौकिक भाषा में (चूंकि) विधि कहा जाता है इसका परिचय अगले अध्याय में कराया जा रहा है।

अध्याय-8

एक-द्वि-त्रि आदि संयोगी भंग प्राप्ति की विधि/त्रैराशिक गणित विधि

जहाँ प्रत्येक, द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी इत्यादि भेद करने हो वहाँ विवक्षित का जो प्रमाण है उस प्रमाण से लेकर एक-एक घटता हुआ 1 अंक तक अनुक्रम से लिखना भाज्य है। और उनके नीचे एक आदि एक-एक बढ़ता हुआ उस प्रमाण के अंक तक क्रम से लिखना भागहार है।

क्रम से पूर्व अंश को अगले अंश से तथा पूर्व हार को अगले हार से गुणा करने पर जो-जो अंश व हर का प्रमाण हो, वहाँ अंश के प्रमाण में हार के प्रमाण का भाग देना चाहिए फिर जो-जो प्रमाण आवें, उतने-उतने ही उसके भंग जानना चाहिए।

उदाहरण – षट्काय जीवों की हिंसा के प्रकरण में किसी जीव को एक काल में किसी एक काय की हिंसा होती है, किसी को एक काल में दो काय की हिंसा होती है, किसी को 3 की इत्यादि। वहाँ एक-द्वि-त्रि आदि संयोगी भंग निम्न प्रकार निकाले जा सकते हैं-

भाज्य या अंश	6	5	4	3	2	1
भाजक या हार	1	2	3	4	5	6

एक संयोगी/प्रत्येक भंग = $\frac{\text{अंश नं} = 1}{\text{हर नं.} = 1} = \frac{6}{1} = 6$

द्वि. संयोगी भंग = $\frac{\text{अंश नं} = 1\text{x}2}{\text{हर नं.} = 1\text{x}2} = \frac{6\text{x}5}{1\text{x}2} = \frac{30}{2} = 15$

त्रि संयोगी भंग = $\frac{\text{अंश नं} = 1\text{x}2\text{x}3}{\text{हर नं.} = 1\text{x}2\text{x}3} = \frac{6\text{x}5\text{x}4}{1\text{x}2\text{x}3} = \frac{120}{6} = 20$

चतु. संयोगी भंग = $\frac{\text{अंश नं} = 1\text{x}2\text{x}3\text{x}4}{\text{हर नं.} = 1\text{x}2\text{x}3\text{x}4} = \frac{6\text{x}5\text{x}4\text{x}3}{1\text{x}2\text{x}3\text{x}4} = \frac{360}{24} = 15$

पंच संयोगी भंग = $\frac{\text{अंश नं} = 1\text{x}2\text{x}3\text{x}4\text{x}5}{\text{हर नं.} = 1\text{x}2\text{x}3\text{x}4\text{x}5} = \frac{6\text{x}5\text{x}4\text{x}3\text{x}2}{1\text{x}2\text{x}3\text{x}4\text{x}5} = \frac{720}{120} = 6$

छः संयोगी भंग = $\frac{\text{अंश नं} = 1\text{x}2\text{x}3\text{x}4\text{x}5\text{x}6}{\text{हर नं.} = 1\text{x}2\text{x}3\text{x}4\text{x}5\text{x}6} = \frac{6\text{x}5\text{x}4\text{x}3\text{x}2\text{x}1}{1\text{x}2\text{x}3\text{x}4\text{x}5\text{x}6} = \frac{720}{720} = 1$

कुल भंग = 6 + 15 + 20 + 15 + 6 + 1 = 63 भंग

[गोम्मटसार कर्मकाण्ड 799 तथा जीव प्रबोधिनी टीका में 977 का भावार्थ]

[सम्प्रति जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग-2 पृ. 228]

त्रैराशिक गणित विधि

त्रैराशिक का जहाँ-तहाँ प्रयोजन जानकर स्वरूप मात्र कहते हैं। जहाँ तीन राशियाँ होती हैं [प्रमाण, फल व इच्छा] वहाँ त्रैराशिक विधान किया जाता है। विवक्षित राशि का प्रमाण = प्रमाण राशि, जो फल प्राप्त होता है वह = फल राशि, अपने इच्छित प्रमाण को = इच्छा राशि जानना चाहिए।

फल राशि का इच्छा राशि से गुणा करके प्रमाण राशि का भाग देने पर अपने इच्छित प्रमाण राशि का प्रमाण प्राप्त होता है।

उदाहरण - 5 रु. का 7 मण अन्न आता है तो 7 रु. का कितना अन्न आयेगा ?

त्रैराशिक करना है - यहाँ प्रमाण राशि - 5 रुपया, फल राशि - 7 मण, इच्छा राशि = 7 रुपया है।

अब फल राशि को इच्छा राशि से गुणा करके प्रमाण राशि का भाग देना है।

$$\text{अर्थात्} = \frac{\text{फल राशि} \times \text{इच्छा राशि}}{\text{प्रमाण राशि}} = \text{लब्ध}$$

$$\frac{7 \times 7}{5} = \frac{49}{5} = 9\frac{4}{5} \text{ मण}$$

[गोम्मटसार जीवकाण्ड पूर्व परिचय पृ. 70/13, सम्प्रति जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग-2 पृ. 28]

अब आगे के अध्याय में हम श्रेणी व्यवहार में संकलन व गुणन व्यवहार विधि के बारे में जानने का प्रयास करते हैं। जिसे लौकिक भाषा में समान्तर और गुणोत्तर श्रेणी आदि भी कहते हैं।

प्रार्थना, याचना, भावना इन सबसे श्रेष्ठ है
आराधना

अध्याय–9

श्रेणी व्यवहार गणित

श्रेणी व्यवहार परिचय – संकलन व्यकलन आदि पूर्वोक्त आठ बातों का प्रयोग दो–चार राशियों तक सीमित न रखकर धारावाही रूप से करना श्रेणी व्यवहार गणित कहलाता है। अर्थात् समान वृद्धि या हानि के लिए अनेकों अंकों या राशियों की लम्बी अटूट धारा या श्रेणी में यह गणित काम आता है।

श्रेणी व्यवहार गणित दो प्रकार है – (1) संकलन व्यवहार श्रेणी

(2) गुणन व्यवहार श्रेणी

प्रथम विधि में 1,2,3,4....$\propto$ इस प्रकार एक वृद्धि क्रमवाली या 2,4, 6, 8....$\propto$ इस प्रकार दो वृद्धि क्रमवाली या इसी प्रकार 3,4,5 संख्यात, असंख्यात, अनन्त वृद्धि क्रमवाली धाराओं का ग्रहण किया जाता है, जो सर्वधारा, समधारा आदि अनेकों भेद रुप है।

द्वितीय विधि में 1, 2, 4, 8....$\propto$ इसी प्रकार दो गुणकार वाली, या 1, 3, 9, 27..... $\propto$ इस प्रकार तीन गुणकार वाली, या इसी प्रकार 4, 5, 6 संख्यात, असंख्यात, व अनन्त गुणकार वृद्धि क्रम वाली धाराओं का ग्रहण किया जाता है जो कृति धारा, घनधारा आदि अनेक भेद रूप है। इन सब धाराओं का परिचय इस अधिकार में दिया जायेगा।

दो–चार अंकों या राशियों का संकलन या गुणन तो सामान्य विधि से भी किया जाना सम्भव है, परन्तु पचास, सौ, संख्यात, असंख्यात व अनन्त राशियों वाली अटूट श्रेणियों का संकलन आदि सामान्य विधि से किया जाना सम्भव नहीं है। इसके लिए जिन विशेष प्रक्रियाओं का प्रयोग किया जाता है, उनका वर्णन भी यहाँ किया जायेगा। यहाँ हम संकलन व्यवहार श्रेणी को समझेंगे।

सर्वधारा आदि श्रेणियों का सामान्य परिचय–

धारेत्थ सव्व समदि घणमाउगइदरवेकदीविंदं ।

तस्स घणाघणमादी अंतं ठाणं च सव्वत्थ ।। [त्रि.सा.गा.नं.–53]

अर्थ– यहाँ धाराओं का वर्णन करते हैं। 1. सर्वधारा, 2. समधारा, 3. कृतिधारा, 4. घनधारा, 5. कृतिमातृक धारा, 6. घनमातृक धारा, तथा इनकी प्रतिपक्षी 7. विषमधारा, 8. अकृतिधारा, 9. अघनधारा, 10. अकृतिमातृक धारा, 11. अघनमातृक धारा, 12. द्विरूप वर्गधारा, 13. द्विरूप घनधारा, 14. द्विरूप घनाघनधारा। ये चौदह धाराएँ हैं। इनके आदि स्थान, अन्त स्थान और स्थान भेद धाराओं में सर्वत्र कहते हैं।

संकेत – $\propto$ = केवलज्ञान प्रमाण उत्कृष्ट अनंतानंत

क्र.सं.	धारा का नाम	विशेषता	कुल स्थान
(1)	सर्वधारा	1, 2, 3, 4, ...$\propto$	$\propto$
(2)	समधारा	2, 4, 6, 8 .... $\propto$	$\propto/2$
(3)	विषमधारा	1, 3, 5, 7 ....$\propto$	$\propto/2$
(4)	कृतिधारा	1, 4, 9, 16 $(1^2, 2^2, 3^2, 4^2)$ .....$(\propto^{1/2})^2$	$\propto^{1/2}$
(5)	अकृतिधारा	कृतिधारा की राशियों से हीन (रहित) सर्वधारा	
		अर्थात् × 2, 3, × 5, 6, 7, 8, × 10.......$\propto$	$\propto^{1/2}$
(6)	घनधारा	1, 8, 27 $(1^3, 2^3, 3^3)$ .... $(\propto^{1/3})^3$	$\propto^{1/3}$
(7)	अघनधारा	घनधारा की राशियों से हीन (रहित) सर्वधारा	
		अर्थात् × 2, 3, 4, 5, 6, 7, × 9, 10 ..... $\propto$	$\propto - \propto^{1/3}$
(8)	कृतिमातृक धारा	1, 2, 3 $\{(1^2)^{1/2}, (2^2)^{1/2}, (3^2)^{1/2}\}$.....$\propto^{1/2}$	$\propto^{1/2}$
(9)	अकृतिमातृकधारा	$\propto^{1/2} + 1, \propto^{1/2} + 2, \propto^{1/2} + 3$ ....$\propto$	
		(कृतिमातृक से आगे जितने स्थान $\propto$ तक शेष रहे वे सर्व)	$\propto - \propto^{1/2}$
(10)	घनमातृकधारा	1, 2, 3, $\{1^3\}^{1/3}, (2^3)^{1/3}, (3^3)^{1/3}\}$.....$\propto^{1/3}$	$\propto^{1/3}$
(11)	अघनमातृक धारा	घनमातृक से आगे जितने स्थान $\propto$ तक शेष रहे वे सब	
		अर्थात् $\propto^{1/3} + 1, \propto^{1/3} + 2, \propto^{1/3} + 3$ .....$\propto^{1/3}$	$\propto - \propto^{1/3}$
(12)	द्विरूप वर्गधारा	$2^2, 2^{2x2}, 2^{2x2x2}$ ..... लरि लरि $\propto$	लरि लरि $\propto$
(13)	द्विरूप घनधारा	$2^3, 2^{2x3}, 2^{2x2x3}$ ..... या $2^{2+1}, 2^{2x2+2}, 2^{2x2x2+4}$,	
		$2^{2x2x2x2+8}$.....2 लरि लरि $\propto$	लरि (लरि−लरि$\propto$)
(14)	द्विरूपघनाघनधारा	$(2^9)^2, (2^9)^{2x2}, (2^9)^{2x2x2}$	लरि लरि $-\propto-4$
(15)	अर्धच्छेद राशि	2, 4, 8, 16, 32, 64	लरि $\propto$
(16)	वर्गशलाका राशि	4, 16, 256 पणट्ठी ..... $\propto$	लरि लरि $\propto$

संकलन व्यवहार श्रेणी

सर्वधन आदि शब्दों का परिचय

सर्वधन – समान वृद्धि क्रमवाली ये धाराएँ कहीं से भी प्रारम्भ होकर तत्पश्चात् नियमित समान वृद्धि क्रम से कहीं तक भी जा सकती हैं। उस धारा या श्रेणी के सर्व स्थानों में ग्रहण किए गए अंकों या राशियों का संकलन या गुणनफल 'सर्वधन' कहलाता है।

जैसे – 4 + 8 + 12 + 16 + 20 + 24 + 28 + 32 = 144 [सर्वधन]

* **गच्छ, पद, स्थान** – प्रथम अंक से लेकर अन्तिम अंक तक पृथक्-पृथक् अंकों का अपना-अपना स्थान होता है। स्थानों का प्रमाण 'गच्छ', 'पद', अथवा 'स्थान' कहलाता है। यहाँ पद या गच्छ का प्रमाण = 8

जैसे – 4 + 8 + 12 + 16 + 20 + 24 + 28 + 32 = 144

* **चय, वृद्धि** – प्रति स्थान पर जितना-जितना बढ़ें अर्थात् समान वृद्धि को 'चय'/'वृद्धि' कहते हैं।

जैसे – 4 + 8 + 12 + 16 + 20 + 24 + 28 + 32 = 144

उपर्युक्त श्रेणी में 4-4 की वृद्धि हुई है।

* **मुख, आदि, प्रथम** – आदि स्थान में जो प्रमाण होता है वह मुख/आदि स्थान/प्रथम कहलाता है।

जैसे – उपरोक्त श्रेणी में मुख/आदि/प्रथम 4 है।

* **भूमि या अन्त** – अन्त स्थान में जो प्रमाण होता है वह भूमि/अन्त स्थान कहलाता है।

जैसे – उपरोक्त श्रेणी में भूमि/अन्त = 32

* **मध्यधन** – सर्व स्थान के बीच का स्थान मध्यधन है। जहाँ स्थान का प्रमाण सम होता है, वहाँ बीच के दो स्थान का द्रव्य जोड़कर आधा करने पर प्राप्त प्रमाण मध्यधन है।

जैसे – उपरोक्त संकलन व्यवहार श्रेणी के बीच के दो स्थान = 16, 20 है।

अत: $\frac{16+20}{2} = \frac{36}{2} = 18$

* **आदिधन** – विवक्षित संख्या का जितना मुख होता है उतना-उतना जितने स्थान हैं उतनी बार रखकर जोड़ने पर जो संख्या प्राप्त हो वह आदिधन कहलाता है।

जैसे – मुख = 4, स्थान = 8 है तो

4 + 4 + 4 + 4 + 4 + 4 + 4 + 4 अथवा $4 \times 8 = 32$

* **उत्तरधन/चयधन** – सर्व स्थानों में जो-जो चय बढ़ता है, उन सब स्थानों के चयों को जोड़कर जो राशि प्राप्त हो, वह चयधन कहलाती है।

* सर्वधन में से आदिधन घटाने पर जो संख्या प्राप्त हो वह उत्तरधन कहलाती है।

सर्वधन = 144, आदिधन= 32

जैसे – 4 + 8 + 12 + 16 + 20 + 24 + 28 = 112

अथवा उत्तरधन = सर्वधन – आदिधन

= 144–32 = 112

⁕ मध्यचयधन/मध्यधन– बीच के स्थान पर प्रथम स्थान की अपेक्षा वृद्धि को मध्यधन कहते हैं।

जैसे – उपरोक्त संकलन श्रेणी में मध्यधन 18 है तो प्रथम स्थान की अपेक्षा अर्थात् प्रथम स्थान 4 की अपेक्षा 14 की वृद्धि हुई।

संकलन व्यवहार श्रेणी संबंधी प्रक्रियाएँ

सर्वधन निकालने की विधियाँ–

(1) यदि आदि धन और उत्तर धन दिया है तब आदि धन व उत्तर धन को जोड़ने पर सर्वधन प्राप्त होता है।

जैसे – यहाँ आदि धन=32, उत्तर धन= 112 है तब

सूत्र– सर्वधन = आदि धन + उत्तर धन

= 32+112

= 144

(2) यदि मध्यधन और गच्छ का प्रमाण दिया है तब मध्यधन को गच्छ से गुणा करने पर सर्वधन प्राप्त होता है।

जैसे–यहाँ मध्यधन = 18, गच्छ = 8 है तब

सूत्र– सर्वधन = मध्यधन x गच्छ

= 18 x 8

= 144

(3) यदि मुख,गच्छ और चय दिया है तब, यहाँ मुख =4, गच्छ = 8, चय =4

''पदमेगेण विहीणं दुभाजिदं उत्तरेण संगुणिदं ।

पभवजुंद पदगुणिदं पदगुणिदं तं विजाणीहि ।। [त्रि.सा.गा.नं. 164]

सूत्र– $$\left[\left\{\frac{\text{गच्छ}-1}{2} \times \text{चय}\right\} + \text{मुख}\right] \times \text{गच्छ} = \text{सर्वधन}$$

$$\left[\left\{\frac{8-1}{2} \times 4\right\} + 4\right] \times 8 = \text{सर्वधन}$$

$$\left[\frac{7}{2} \times 4 + 4\right] \times 8 = \text{सर्वधन}$$

$$\left[\frac{28}{2} + 4\right] \times 8 = (14+4) \times 8 \text{ सर्वधन}$$

$$18 \times 8 = \text{सर्वधन}$$

$$144 = \text{सर्वधन}$$

(4) यदि मुख, भूमि और गच्छ दिया हो तब यहाँ मुख = 4, भूमि = 32, गच्छ/पद = 8

"**मुखभूमिजोगदले पदगुणिदे पदधनं होदि**" [त्रि.सा.गा.नं. - 163]

सूत्र– $\frac{\text{मुख+भूमि}}{2} \times$ **गच्छ = सर्वधन**

$\frac{4+32}{2} \times 8$ = सर्वधन

$\frac{36}{2} \times 8$ = सर्वधन

18×8 = सर्वधन

144 = सर्वधन

(5) यदि मुख, भूमि, गच्छ दिया हो तब

[सर्वधन = S_n, गच्छ = n, मुख = T_1, भूमि = T_n]

यहाँ S_n = ?, n = 8, T_1 = 4, T_n = 32

सूत्र– $S_n = \frac{T_1+T_n}{2} \times n = \frac{4+32}{2} \times 8$

$= \frac{36}{2} \times 8$

$= 18 \times 8 = 144$

<u>**गच्छ निकालने की विधि**</u> – यदि मुख, भूमि और चय दिया हो तब

"**आदी अंत्ते सुद्धे बड्ढिहिदे इगिजुदे ठाणा।**" [त्रि.सा.गां.नं.-57]

यहाँ मुख = 4, भूमि = 32, चय = 4

सूत्र– **गच्छ =** $\frac{\text{भूमि−मुख}}{\text{चय}}$ **+1**

गच्छ = $\frac{32-4}{4} + 1$

गच्छ = $\frac{28}{4} + 1$

गच्छ = $7+1$

गच्छ = 8

चय निकालने की विधि–

(1) यदि सर्वधन, आदिधन व गच्छ दिया हो तब

''आदिधनोन गुणितं पदोनपदकृतिदलेन सभाजतं पचयं।'' [गो.जी./भाषा/49/123]

यहाँ सर्वधन : 144, आदिधन = 32, गच्छ = 8

सूत्र–चय =(सर्वधन–आदिधन) ÷ $\frac{\text{गच्छ}^2-\text{गच्छ}}{2}$

चय = $(144 - 32) \div \frac{8^2-8}{2}$

चय = $112 \div \frac{8^2-8}{2}$

चय = $112 \div \frac{64-8}{2}$

चय = $112 \div \frac{56}{2}$

चय = $112 \div 28$

चय = $\frac{112}{28}$

चय = 4

अत: चय = 4

(2) यदि सर्वधन, मुख व गच्छ दिया हो तब चय कितना होगा ?

यहाँ सर्वधन = 144, मुख = 4, गच्छ = 8

सूत्र–चय= $\left\{\frac{\text{सर्वधन}}{\text{गच्छ}} - \text{मुख}\right\} \frac{\text{गच्छ}-1}{2}$

अथवा $d = \left\{\frac{S_n}{n} - T_1\right\} \div \frac{n-1}{2}$

$d = \left\{\frac{144}{8} - 4\right\} \div \frac{8-1}{2}$

$d = \left\{18-4\right\} \div \frac{7}{2}$

$d = \frac{14 \times 2}{7}$

$d = \frac{28}{7}$

$d = \underline{4}$

मुख या आदि निकालने की विधि – (1) यदि सर्वधन, उत्तरधन व गच्छ दिया हो तब

"वेगपदं चयगुणिदं भूमिम्हि रिणधणं चकए। [त्रि.सा.गा.नं.-163]

यहाँ सर्वधन = 144, उत्तरधन = 112, गच्छ = 8, भूमि = 32, चय = 4, गच्छ = 8

(i) भूमि – चय (गच्छ – 1) अथवा $T_n - d\,(n-1) =$ मुख (T_1)

$$32 - 4\,(8-1) = T_1$$
$$32 - 32 + 4 = T_1$$
$$0+4 = T_1$$
$$4 = T_1 \text{ (मुख)}$$

(2) $\dfrac{\text{सर्वधन}-\text{उत्तरधन}}{\text{गच्छ}}$ = मुख [गो.जी./भाषा/49/122/6]

$$\frac{144-112}{8} = \text{मुख}$$

$$\frac{32}{8} = \text{मुख}$$

मुख = 4

अन्त या भूमि निकालने की विधि – यदि गच्छ, चय व मुख दिया हो तब

"व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तदादिसहितं अंतधनं।" [गो.जी./भाषा/49/122]

यहाँ गच्छ =8, चय = 4, मुख = 4, अन्त/भूमि = ?

सूत्र– **भूमि = मुख+चय (गच्छ – 1) अथवा $T_1 + d\,(n-1)$**

भूमि = 4 + 4 (8 – 1)

भूमि = 4 + 32 – 4

भूमि =4 + 28

भूमि = 32

उत्तरधन निकालने की विधि – (1) यदि गच्छ व चय दिया हो तब

"व्येकपदार्थघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं।" [गो.जी./भाषा/49/123]

यहाँ गच्छ (n) = 8, चय (d) = 4, उत्तरधन/चयधन = ?

सूत्र– $\frac{\text{गच्छ}-1}{2}$ x चय x गच्छ अथवा $\frac{n-1}{2}$ **nd = चयधन/उत्तरधन**

$$\frac{8-1}{2} \times 8 \times 4 = \text{उत्तरधन}$$

$$\frac{7}{2} \times 32 = \text{उत्तरधन}$$

$$\frac{224}{2} = 112 = \text{उत्तरधन}$$

(2) यदि गच्छ, चय व मुख दिया हो तब

"पदमेगेण विहीणं दुभाजिदं उत्तरेण संगुणिदं ।
पभवजुंद पदगुणिदं पदगुणिदं होदि सव्वत्थ ।।" [गो.क./भाषा/904/1081]

सूत्र– $\left\{\frac{\text{गच्छ}-1}{2} \times \text{चय}\right\} \times \text{गच्छ} = \text{उत्तरधन}$

यहाँ गच्छ = 8, चय = 4 तब उत्तरधन/चयधन = ?

$$\left\{\frac{(8-1)}{2} \times 4\right\} \times 8 = \text{उत्तरधन}$$

$$\left\{\frac{7}{2} \times 4\right\} \times 8 = \text{उत्तरधन}$$

$$\frac{28}{2} \times 8 = \text{उत्तरधन}$$

$$14 \times 8 = \text{उत्तरधन}$$

$$112 = \text{उत्तरधन}$$

आदिधन निकालने की विधि – यदि गच्छ व मुख दिया हो तब –

"पदहतमुखमादिधनं।" [गो.जी./भाषा/49/122]

यहाँ मुख = 4, गच्छ = 8, आदिधन = ?

सूत्र– **मुख × गच्छ = आदिधन**

$4 \times 8 =$ आदिधन

आदिधन = 32

व्यकलन विधि

संकलन धन = $\left[\left\{ \frac{\text{पद}-1}{2} \times \text{चय} - \text{आदि धन} \right\} \times \text{पद} \right]$ यहाँ पद=1000 चय=1, आदिधन=1000

$= \left[\left\{ \frac{1000-1}{2} \times 1 - 1000 \right\} \times 1000 \right]$

$= \left[\left\{ \frac{999}{2} \times 1 - 1000 \right\} \times 1000 \right]$

$= \left[\left\{ 499.5 - 1000 \right\} \times 1000 \right]$

$= \left[500.5 \times 1000 \right]$

$= 500500.0$

$= 500500$

नोट–यहाँ हमने व्यकलन विधि को दर्शाया है इसी को यदि संकलन विधि से करना है तो इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि जहाँ हमने आदि धन भूमि (1000) को लिया है वहाँ आदिधन मुख (1) को लेना चाहिए।

यथा- संकलन धन = $\left[\left\{ \frac{\text{पद}-1}{2} \times \text{चय} \right\} + \text{आदि धन} \right] \times \text{पद}$

$= \left[\left\{ \frac{1000-1}{2} \times 1 \right\} + 1 \right] \times 1000$

$= \left[\left\{ \frac{999-1}{2} \times 1 \right\} + 1 \right] \times 1000$

$= \left[499.5 + 1 \right] \times 1000$

$= 500.5 \times 1000$

$= 500500.0$

$= 500500$

इसी प्रकार हम स्वर्गों विमानों व नरकों के बिलों का अथवा और भी किन्हीं का भी संकलन हम कम समय में आसानी से प्राप्त कर सकते हैं और 1–1 चय वृद्धि के लिए 1 से लेकर एक लाख, 10 लाख, 1 करोड़ आदि की संख्याओं को जोड़ा जा सकता है। यहाँ एक से 100 तक की संख्या को जोड़ना है।

मध्यधन = $\frac{100+1}{2} \times \text{पद} = \frac{101}{2} \times 100 = 50.5 = \times 100 = 5050.0$

$= 5050$

नियम– इसी प्रकार इन नियमों/सूत्रों द्वारा हम सम–विषम कोई भी संख्या हो, बड़ी से बड़ी संख्याओं का संकलन निकाल सकते है।

जैसे–1 से 1000 तक संख्या का संकलन निकालना है तो मध्यधन निकालकर पद से गुणा करने पर 1 से 1000 की संख्या का जोड़/संकलन प्राप्त होगा।

मध्यधन = $\frac{\text{मुख}+\text{भूमि}}{2}$ (यहाँ मुख =1000, भूमि = 1)

$$\frac{1000+1}{2} = \frac{1001}{2} = 500.5$$ (मध्यधन)

संकलन धन = मध्य धन x पद (यहाँ पद = 1000)

= 500.5 x 1000

= 500500.0

= 500500

नोट–अगले अध्याय में विभिन्न शास्त्रों में उद्धृत सहनानियों के बारे में जानने का प्रयास करते हैं...

दूसरों को भोजन कराये तो–फल
अपने को भोजन कराये तो–मल
और न स्वयं करे, ना किसी को कराये तो–विमल।

अध्याय – 10
सहनानियाँ

लौकिक संख्याओं की अपेक्षा सहनानियाँ

* जहाँ जिस पदार्थ का नाम लिखा हो वहाँ उस पदार्थ की जितनी संख्या होती है उतनी ही संख्या जानना चाहिए।

त्रिलोकसार ग्रन्थ की गाथा नं. २१ में कहा भी है –

विधुणिधिणगणवर विणभणिधिणयण बलर्द्धि णिधिखर हस्तिनः।

अर्थात् विधु अर्थात् चन्द्रमा = १, निधि = ९, नग अर्थात् पर्वत = ७, रवि = १२ (राशि की अपेक्षा

नभ = ०, नयन = २, बल अर्थात् बलभद्र = ९, ऋद्धि = ९, निधि = ९, खर = ६

हाथी = ८ (दिग्गज की अपेक्षा) आदि। इस प्रकार अन्य जगह भी जानना चाहिए।

कटपयपुरस्थवर्णैर्नवनवपञ्चाष्टकल्पितैः क्रमशः।
स्वरं–व्यंजन शून्यं संख्यामात्रोपरिमाक्षरं त्याज्यम्।।

अर्थात्	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ये नौ
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	
	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	ये नौ
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	
	प	फ	ब	भ	म					ये पाँच
	१	२	३	४	५					
	य	र	ल	व	श	व	स	ह		ये आठ
	१	२	३	४	५	६	७	८		

अकारादि स्वर, ञ तथा न को बिन्दी ० जानना चाहिए तथा अक्षर की मात्रा और ऊपर कोई अक्षर हो तो उसे छोड़ देना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि अंक के स्थान पर कोई अक्षर दिया हो तो वहाँ व्यंजन का अर्थ तो उपरोक्त प्रकार १, २ आदि जानना चाहिए। जैसे ङ, ण, म, श इन सबका अर्थ ५ है। और स्वरों का तथा ञ, न, का अर्थ बिन्दी [0] जानना चाहिए। मात्रा तथा संयोगी अक्षरों को सर्वथा छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार से अंक प्राप्त हो जायेगा।

गोम्मटसार जीवकाण्ड की अर्थ संदृष्टि

लक्ष	= ल.	जघन्य ज्ञान	= ज.ज्ञा.
कोटि	= को.	मूल	= मू.
लक्ष कोटि	= ल.को.	जघन्य को आदि लेकर अन्य भी	= ज=
कोड़ा कोड़ी	= को.को.	६५ को आदि लेकर अन्य भी	= ६५=

अन्त: कोटा कोटि	= अं. को.को.	एकट्ठी	= १८=
जघन्य	= ज०	बादाल	= ४२=
उत्कृष्ट	= उ०	पणट्ठी	= ६५=
अजघन्य	= अज०		
साधिक जघन्य	= ज०		

Note – इसी प्रकार सर्वत्र प्रकृत नाम के आदि अक्षर उस उसकी सहनानी है।

अलौकिक संख्याओं की अपेक्षा सहनानियाँ [गोम्मटसार जीवकाण्ड जी से]

अलौकिक संख्याएँ	**अर्थ संदृष्टि (सहनानी)**
संख्यात	**१**
असंख्यात	ɔ$^{(a)}$
अनन्त	ख
जघन्य संख्यात	२
जघन्य असंख्यात	२
उत्कृष्ट असंख्यात	१५
जघन्य अनंत	१६
उत्कृष्ट अनंत	के (केवलज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेद)
उत्कृष्ट संख्यात	१५
जघन्य परितासंख्यात	१६
उत्कृष्ट परितासंख्यात	$२^{१८}$
जघन्य युक्तासंख्यात	२
उत्कृष्ट युक्तासंख्यात	$४^{१८}$
जघन्य असंख्यासंख्यात	४
उत्कृष्ट असंख्यासंख्यात	$२५६^{१८}$
जघन्य परितानन्त	२५६
उत्कृष्ट परितानन्त	ज.जु.अ.^{१८}
जघन्य युक्तानन्त	ज.जु.अ.
उत्कृष्ट युक्तानन्त	ज.जु.अ.व.^{१८}
जघन्य अनन्तानन्त (जघन्य युक्तानन्त का वर्ग)	ज.जु.अ.व.
उत्कृष्ट अनन्तानन्त (केवलज्ञान)	के
मध्यम अनंतानंत (सम्पूर्ण जीव राशि)	१६

केवलज्ञान का प्रथम मूल	के.मू.^{१}
केवलज्ञान का द्वितीय मूल	के.मू.^{२}
केवलज्ञान	के
ध्रुव राशि	२५६/१३
असंख्यात लोक प्रमाण राशि	६
π (१६२२ या १६/६)	$\sqrt{१०}$

द्रव्य गणना की अपेक्षा सहनानियाँ – (गोम्मटसार जीवकाण्ड की अर्थ संदृष्टि)

सम्पूर्ण जीव राशि	१६
संसारी जीव राशि	१३
मुक्त (सिद्ध) जीव राशि	३
पुद्गल राशि	१६ ख.
काल समय राशि	१६ ख.ख.
आकाश प्रदेश राशि	१६ ख.ख.ख.

पुद्गल परिवर्तन निर्देश की अपेक्षा सहनानियाँ – (गोम्मटसार जीवकाण्ड की अर्थ संदृष्टि)

गृहीत द्रव्य	१
अग्रहीत द्रव्य	०
मिश्र द्रव्य	×

एकेन्द्रियादि जीव निर्देश की अपेक्षा सहनानियाँ – (गोम्मटसार जीवकाण्ड की अर्थ संदृष्टि)

एकेन्द्रिय	ए
विकलेन्द्रिय	वि
पंचेन्द्रिय	पं
असंज्ञी	अ
संज्ञी	सं
पर्याप्त	२
अपर्याप्त	३
सूक्ष्म	सू.
बादर	बा.

कर्म व स्पर्धकादि निर्देश की अपेक्षा – [गोम्मटसार जीवकाण्ड की अर्थ संदृष्टि]

समय प्रबद्ध	स$_{ə}$
उत्कृष्ट समय प्रबद्ध	स$_{३२}$
जघन्य वर्गणा	व
स्पर्धक शलाका	९
एक स्पर्धक विषै वर्गणाऐं	४

यहाँ ९ व ४ के अंक दिये हैं वे संकेत मात्र इनके होने पर यह पहचान जो जाती है कि यहाँ क्या कहना चाहते हैं किन्तु एक स्पर्धक में अनंत वर्गणाएँ हैं जिसका प्रतीक चार माना है। इसी प्रकार सम्पूर्ण जीव राशि को १६ माना है वह संकेताक्षर मात्र है।

क्षेत्र प्रमाणों की अपेक्षा सहनानियाँ – [तिल्लोय पण्णति, गोम्मटसार व लब्धिसार से]

सूच्यंगुल	सू	सू	२
प्रतरांगुल	सू^{२}	प्र	४
घनांगुल	सू^{३}	घ	६
जगत्श्रेणी		ज	—
जगत्प्रतर	ज^{२}	ज.प्र.	=
लोकप्रतर	ज^{३}	लो.प्र.	=
घनलोक	ज^{३}	घ. लो.	≡
रज्जू	$\frac{\text{जगुत्श्रेणी}}{७}$	र	$\frac{—}{७}$
रज्जू प्रतर	रज्जू^{२}	$\overline{(\smile^{2})}$	$\frac{=}{४९}$
रज्जू घन	रज्जू^{३}	$\overline{(\smile^{3})}$	$\frac{\equiv}{३४३}$

सूंच्यगुल की अर्धच्छेद राशि	(पल्य की अर्धच्छेद राशि)^{२}	छे छे
सूच्युंगल की वर्गशलाका राशि	(पल्य की वर्गशलाका राशि)^{२}	व$_{२}$
प्रतरांगुल की अर्धच्छेद राशि	(सूच्यंगुल की अर्धच्छेद राशि × २)	छे छे$_{२}$
प्रतरांगुल की वर्गशलाका राशि	(सू. व. +१)	व$_{२}^{१-}$
घनांगुल की अर्धच्छेद राशि		छे छे$_{३}$
घनांगुल की वर्गशलाका राशि		व$_{२}$
जगत्श्रेणी की अर्धच्छेद राशि	(पल्य की अर्धच्छेद राशि ÷ अंस.)	ə छे छे छे$_{३}$
	× (घनांगुल की अर्धच्छेद राशि)	या वि छे छे$_{३}$

(यहाँ वि = विरलन राशि)

शंका–प्रथम वर्गमूल किसे कहते हैं व द्वितीय वर्गमूल किसे कहते है ?

समाधान–किसी भी संख्या का पहली बार वर्गमूल निकालना प्रथम वर्ग मूल है उसी संख्या का दूसरी

बार वर्गमूल निकालना द्वितीय वर्गमूल है जैसे माना 65536 संख्या है इसका प्रथम वर्गमूल 256 है तथा इसी का द्वितीय वर्गमूल 16 है।

जगत्श्रेणी की वर्गशलाका राशि	घनांगुल की वर्गशलाका + $\frac{\text{पल्य की वर्ग शलाका}}{\text{ज.परीअसं.x२अ.}}$	
या	$व_2 + \frac{व}{१६x२}$	$\frac{व}{१६x२}$
जगत्प्रतर की अर्धच्छेद राशि	जगत्श्रेणी की अर्द्धच्छेद राशि × २	७छे छे छे$_६$
जगत्प्रतर की वर्गशलाका राशि	जगत्श्रेणी की वर्गशलाका + 1	[व$^{१-}$ १६/२ व$_२$]
घनलोक की अर्धच्छेद राशि	७छे छे छे$_६$	वि छे छे$_६$
घनलोक की वर्गशलाका राशि		[व १६/२ व$_२$]

काल प्रमाणों की अपेक्षा सहनानियाँ – [गोम्मटसार जीवकाण्ड की अर्थ संदृष्टि]

आवली	आ	२
अन्तर्मुहूर्त	संख्यात आ	२$_{९}$
पल्य	प.	६५५३६
सागर	सा.	
प्रतरावली	आवली^{२} / २^२	४
घनावली	आवली^{३} / २^३	८
पल्य की अर्धच्छेद राशि	छे	
पल्य की वर्गशलाका राशि	व अथवा	छे^{९}
सागर की अर्धच्छेद राशि	छे (९)	
संख्यात आवली		२$_{९}$

गणित की प्रक्रियाओं की अपेक्षा सहनानियाँ – [गोम्मटसार जीवकाण्ड की अर्थ संदृष्टि]

नोट – यहाँ '×' को सहनानी का अंग न समझना। केवल आँकड़ों का अवस्थान दर्शाने को ग्रहण किया है।

व्यकलन (घटाना)	$\overline{\times}$ (ऊपर चिह्न)	गुणा	x^1
संकलन (जोड़ना)	$\overline{\times}$	मूल	मू.
किंचिदून	×-	वर्गमूल	व.मू.

एक घाट	१$^{\frown}$	प्रथम वर्गमूल	मू^{१}
किंचिदधिक	1x	द्वितीय वर्गमूल	मू^{२}
संकलने में एक दो तीन आदि राशियाँ	I, II, III	घनमूल	घमू
		विरलन राशि	वि.
ऋण राशि	$\times^{0}$		
पाँच घाट लक्ष या ल$_{५}$	ल–५		

लघुरिक्थ गणित की अपेक्षा सहनानियाँ – [गोम्मटसार जीवकाण्ड की अर्थ संदृष्टि]

संकेत – अ.छे – अर्धच्छेद राशि
व.श. – वर्गशलाका राशि

पल्य की अर्धच्छेद राशि	$\log_2$ of पल्य	प$_{२}$–छे
पल्य की व.श. (जघन्य वर्गणा)	$\log_2 \log_2$ of पल्य	व
सागर की अ.छे.	पल्य की $\simeq$ अर्धच्छेद + संख्यात	९/छे
सूच्यंगुल की अ.छे.	(पल्य की अर्धच्छेद राशि)^{२}	छे छे
सूच्यंगुल की व.श.	पल्य की व.श. × २	व$_{२}$
प्रतरांगुल की अ.छे.	सूच्यंगुल की अ.छे.×२	छे छे
प्रतरांगुल की व.श.	सूच्यंगुल की व.श.+१	व$_{२}^{१-}$
घनांगुल की अ.छे.	सूच्यंगुल की अ.छे × ३	छे छे$_{३}$
घनांगुल की व.श.	द्विरूप वर्गधारा में जितने स्थान आगे जाकर सूच्यंगुल प्राप्त होता है उतने ही स्थान आगे जाकर द्विरूप घनधारा में घनांगुल प्राप्त होता है।	व$_{२}$
जगत्श्रेणी की अ.छे.	पल्य की अ.छे + अंस.	छे छे छे$_{३}$ ७या वि छे छे$_{३}$
जगत्श्रेणी की व.श.	(घनांगुल की व.श.+ज. परीता संख्यात)x२	{व / १६/२ / व$_{२}$}
जगत्प्रतर के अ.छे.	जगत्श्रेणी की अ.छे. × २	छे छे छे$_{६}$
जगत्प्रतर की व.श.	जगत्श्रेणी की व.श. + १	{१– / व / १६/२ / व$_{२}$}
घनलोक के अ.छे.	सूच्यंगुल की अ.छे. × 3	छे छे छे$_{६}$

घनलोक की व.श.	द्विरूप वर्ग धारा में जितने स्थान जाने पर जगत्श्रेणी प्राप्त होती है, उतने ही स्थान जाने पर द्विरूप घनधारा में घनलोक प्राप्त होता है।	{ व १६/२ $व_{२}$ }

श्रेणी गणि की अपेक्षा सहनानियाँ – [गोम्मटसार जीवकाण्ड की अर्थ संदृष्टि]

एक गुणहानि	८
एक गुणहानि के स्पर्धक	६
डेढ़ गुणहानि	१२
दो गुणहानि (निषेकाहार)	१६
नाना गुणहानि	ना
[किंचिदून डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध	$ə^{१२-}$
उत्कृष्ट समयप्रबद्ध	स ३२

षट् गुणवृद्धि हानि की अपेक्षा सहनानियाँ – [गोम्मटसार जीवकाण्ड की अर्थ संदृष्टि]

अनन्त भाग वृद्धि/हानि	३ (उरवंक)
असंख्यात भाग वृद्धि/हानि	४ (चतुरंक)
संख्यात भाग वृद्धि/हानि	५ (पंचक)
संख्यात गुण वृद्धि/हानि	६ (षडंक)
असंख्यात गुण वृद्धि/हानि	७ (सप्तंक)
अनन्त गुणवृद्धि/हानि	८ (अष्टंक)

पूर्वोक्त सभी सहनानियों के आधार पर अब अक्षर क्रम की अपेक्षा सहनानियों को कहते हैं –

अको को	अन्त: कोटा कोटी
अ	असंज्ञी
उ	उत्कृष्ट 'अनन्तभाग, अपकर्षण भागहार'
ए	एकेन्द्रिय
के	केवलज्ञान 'उत्कृष्ट अनन्तानन्त'
$के मू^{१}$	केवलज्ञान का प्रथम वर्गमूल
$के मू^{२}$	केवलज्ञान का द्वितीय वर्गमूल
को	कोटि
को.को.	कोटाकोटी
ख	अनन्त

ख ख ख	अनन्तानन्त लोकाकाश
घ	घन, घनांगुल
घ मू	घनमूल
घ लो	घनलोक
छे	अर्द्धच्छेद तथा पल्य की अ.छे. राशि
छे छे	सूच्यंगुल के अ.छे.
छे छे$_{२}$	प्रतरांगुल के अ.छे.
छे छे$_{३}$	घनांगुल के अ.छे.
[छे छे छे$_{३}$ ə	जगत्श्रेणी के अ.छे.
[छे छे छे$_{६}$ ə	जगत्प्रतर के अ.छे.
[छे छे छे$_{९}$ ə	घनलोक के अ.छे.
ज	जघन्य, जगत्श्रेणी
ज^{१}	साधिक जघन्य
ज =	जघन्य को आदि लेकर अन्य भी
ज जु अ	ज. युक्तानन्त
ज जु अ^{१}⊓	उ. परीतानन्त
ज जु अ व	ज. युक्तानन्त का वर्ग, ज. अनन्तानन्त
ज जु अ व^{१}⊓	उत्कृष्ट युक्तानन्त
ज.ज्ञा.	जघन्य ज्ञान
ज.प्र.	जगत्प्रतर
ना	नाना गुण हानि
प	पल्य
प्र	प्रतरांगुल
बा	बादर
मू	मूल
मू^{१}	प्रथम मूल
मू^{२}	द्वितीय मूल
ल	लक्ष
ल को	लक्ष कोटि

लो	लोक
लो.प्र.	लोक प्रतर
व	वर्ग, जघन्य वर्गणा, पल्य की वर्ग शलाका
व$_{२}^{१-}$	प्रतरांगुल की व.श.
व$_{२}$	घनांगुल की व.श.
व	सूच्यंगुल की व.श.
१६/२	जगत्श्रेणी की व.श.
[व$^{१-}$	
१६/२	जगत्प्रतर की व.श.
व$_{२}$	
[व	
१६/२	घनलोक की व.श.
व$_{२}$	
व.मू.	वर्गमूल
व.मू.^{१}	प्रथम वर्गमूल
व.मू.^{२}	द्वितीय वर्गमूल
वि	विरलन राशि
सं	संज्ञी
स७	समय प्रबद्ध
स ३२	उत्कृष्ट समयप्रबद्ध
सा	सागर
सू	सूक्ष्म, सूच्युंगल
सू^{२}	(सूच्युंगल)^{२}, प्रतरांगुल
सू^{३}	(सूच्यंगुल)^{३}, घनांगुल

पूर्वोक्त सभी सहनानियों के आधार पर अब अंक क्रम की अपेक्षा से सहनानियों को कहते हैं –

१	गृहीत पुद्गल प्रचय
२	जघन्य संख्यात, जघन्य असंख्यात, जघन्य युक्तासंख्यात, सूच्यंगुल, आवली
२०	अन्तर्मुहूर्त, संख्यात आवली
२$^{१⏜}$	उत्कृष्ट परीतासंख्यात
३	सिद्ध जीवराशि
४	असंख्यात भाग, जघन्य असंख्यातासंख्यात, एक स्पर्धक में वर्गणा, प्रतरांगुल, प्रतरावली

५	संख्यात भाग
६	संख्यात गुण, घनांगुल
७	असंख्यात गुण
$\overline{\text{७}}$	रज्जू
$\overline{\text{७}}^{\text{२}}$	रज्जू प्रतर
$\overline{\text{७}}^{\text{३}}$	रज्जू घन
८	अनन्त गुण, एक गुणहानि, घनावली
९	एक गुणहानि में स्पर्धक, स्पर्धक शलाका
१२	डेढ़ गुणहानि
१३	संसारी जीव राशि
१५	उत्कृष्ट असंख्यात
१६	जघन्य अनन्त, सम्पूर्ण जीव राशि, दो गुणहानि, निषेकाहार
१६ ख	पुद्गल राशि
१६ ख ख	काल समय राशि
१६ ख ख ख	आकाश प्रदेश
१८	एकट्ठी
४२	बादाल
$\overline{\overline{\text{४९}}}$	जगत् प्रतर
६५	पणट्ठी
$\overline{\overline{\text{३४३}}}$	रज्जूघन
$\overline{\overline{\overline{\text{२५६}}}}^{\text{१}\frown}$	जघन्य परीतानन्त
$\text{२५६}^{\text{१}}$	उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात
२५६/१३	ध्रुव राशि

पूर्वोक्त सभी सहनानियों के आधार पर अब आँकड़ों की अपेक्षा सहनानियों को कहते हैं –

Note – यहाँ '×' को सहनानी का अंग न समझना। केवल आँकड़ों का अवस्थान दर्शाने को ग्रहण किया है।

$\overline{\times}$	संकलन जोड़ना
$\times_$	किंचिदून
$\times^{\frown}$	व्यकलन (घटाना)
$\text{१}^{\frown}$	एक घाट
$\times^{1}$	किंचिदधिक
I, II, III	संकलन में एक, दो, तीन आदि राशियाँ

0	अग्रहीत वर्गणा
×	मिश्र वर्गणा
२$^{१□}$	उत्कृष्ट परीतासंख्यात
४$^{१□}$	उत्कृष्ट युक्तासंख्यात
२५६$^{१□}$	उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात
ज जु अ$^{१□}$	उत्कृष्ट युक्तानंत
ज^{१}	साधिक जघन्य
व$_{२}^{१-}$	सूच्युंगल की वर्गशलाका
[व$^{१-}$ 16/2 व$_{2}$	जगत्प्रतर की वर्गशलाका
—	जगत्श्रेणी
=	जगत्प्रतर
≡	घनलोक
$\overline{७}$	रज्जू
$\overline{\overline{४९}}$	रज्जू प्रतर
$\overline{\overline{\overline{३४३}}}$	रज्जू घन
ꝭ	संख्यात
∂	असंख्यात
[ꝭ छे	सागर की अर्धच्छेद राशि
[छे छे छे$_{३}$]	जगत्श्रेणी की अर्धच्छेद राशि
[छे छे छे$_{६}$]	जगत्प्रतर की अर्धच्छेद राशि
[छे छे छे$_{९}$]	घनलोक की अर्धच्छेद राशि
∂$^{१२}_{३}$ꝭ	किंचिदून द्वयर्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्ध अन्तर्मुहूर्त, संख्यात आवली

कर्मों की स्थिति व अनुभाग की अपेक्षा सहनानियाँ [लब्धिसार की अर्थ संदृष्टि]

अचलावली या आबाधा काल

क्रमिक हानिगत निषेक, उदयावली, उच्छिष्टावली

कर्म स्थिति [आबाधावली के ऊपर निषेक रचना]

आबाधा काल + उदयावली + उपरितन स्थिति + उच्छिष्टावली

अनुभाग में अविभाग प्रतिच्छेद के प्रमाण की समानता लिए एक वर्ग वर्गणा में पाई गई वर्गणा की संदृष्टि

वर्ग का प्रमाण वर्गणा में क्रम से हानि रूप होता है।

कर्मानुभाग

[गो.जी की अर्थ संदृष्टि, जीव तत्त्व प्रदीपिका, ति.प., लब्धि सार की अर्थ संदृष्टि सम्प्रति जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश-2 पृ.सं. 218-222]

नोट-आगे के अध्याय में तिलोय पण्णत्ति व त्रिलोकसार ग्रंथ से लोक के क्षेत्रफल-घनफल-परिधि को विभिन्न प्रकारसे जानेंगे...